कश्मीर के एक सिद्ध महापुरुष



श्रीमान श्री पापा जी महाराज

(श्री जानकी नाथ साहिब दर)

लेखक

आचार्य त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी'









कश्मीर के एक सिद्ध महापुरुष

विद्वान लेखक, समीक्षक
पत्रकार एवं समाजसेवक
डा० रत्नलाल शान्त जी
को सप्रेम भेंट
लेखक

श्रीमान श्री पापा जी महाराज
(श्री जानकी नाथ साहिब दर)

लेखक

आचार्य त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी'

प्रकाशक : उत्कृष्ट पारिजात आश्रम,
श्री राधा–कृष्ण मंदिर परिसर,
ढोके वज़ीरां नगरोटा, जम्मू
पिन – 181221
दूरभाष – 2673158

प्रकाशन समय २००६, तदनुसार
युगब्द ५१०६, तदनुसार वि० स० २०६२

संख्या ५००

सहयोग राशि रु० १०१

मुद्रक M.K. Enterprises
JK Colony, Paloura Top,
Cell : 94191-87685

कश्मीर के एक कम परिचित सिद्ध महापुरुष

श्रीमान श्री पापा जी महाराज

(श्री जानकी नाथ साहिब दर)

एक संक्षिप्त जीवन-परिचय

लेखक

आचार्य त्रिलोकी नाथ पण्डित 'वानप्रस्थी'

एम०ए० (हिन्दी), एम०ए० (संस्कृत)

प्रकाशक

उत्कृष्ट पारिजात आश्रम

श्री राधा कृष्ण मंदिर परिसर

ढोकें वज़ीराँ, नगरोटा जम्मू

विषय सूची

समर्पण

श्रीमान श्री पापाजी महाराज की जन्म शताब्दी के
सुअवसर पर

उनके श्रीचरणों में समर्पित किया गया यह श्रद्धा सुमन

उनके समस्त भक्तजनों एवं अन्य श्रद्धावान महानुभावों को

भेंट स्वरूप अर्पण करते हुए

हम अपार हर्षित एवं आनन्दित हो रहे हैं।

– लेखक

FOREWORD

During closing years of the 9th decade of the last century, most of the devotees of Shrimaan Shri Papa Ji Maharaj, once assembled in Gouri-Shankar Mandir Ashram, Sathu Barbarshah Srinagar and desired to get the biography of Shrimaan Ji prepared and published for the benefit of all devotees and those interested in God-realization. For this purpose few devotees gathered some information about sacred life of Shrimaan Ji. After some time Sh. T.N. Pandita of Kulgam along with another devotee Sh. D.N. Raina once got appropriate chance and informed Shrimaan Ji about the desire of the devotees. Shrimaan Ji gazed to them for some time glamorously and happily gave his consent to do so – as informed by them afterwards. He even replied to some of their questions and also informed them some events of his life, otherwise unknown to all till then.

Then started the most unfortunate forced exodus of Kashmiri Pandits by the barbourous uncivilized Islamic fundamentalists. The whole Pandit society got shattered out of Kashmir and none could meet one another for quite a long time. Meanwhile Shrimaan Ji also took Maha Samadhi in July 1990 in a miraculous way at his residence in Srinagar.

After some time some of the devotees of Shrimaan Ji met at Jammu and began to celebrate the birth anniversary and Maha Samadhi Divas of Shrimaan Ji at Shri Ram Krishna Advait Ashram, Uduwalla, Jammu under the guidance of the patron of the Ashram Shriman Shakti Chaitanya Ji Maharaj,

who was also acquainted with Shrimaan Ji in his boyhood days.

One of the devotees and close relative of Shrimaan Ji namely Sh. Ajnath Ji, who is working with a Newspaper at Delhi tried to write the desired biography and for this purpose I gave him every help and encouragement, but his efforts could not bear in desired result. Another devotee at Jammu Shrimati Durga Ji then started the pious work and again I encouraged her and even wrote to her my comments about the little work she had done. But unfortunately her health conditions deteriorated and within a short span of time she also passed away.

It was then in Nov. 2001 when I was putting up at Vanprastha Ashram Rishikesh that Pandita Ji along with his wife Raj Laxmi and Sh. Dwarika Nath Ji came to see me. They had come to Haridwar to attend the Vanprastha Conference there. They remained with me for three days and it was a fine time of 'Sat Sang' when all events of old good days were recollected. There again arose the question of writing of the biography of Shrimaan Ji and I again requested Pandita Ji to take up the challenging task. I again gave him all sort of information and written material with me. After some time I came to know that he had taken up the task and I asked Sh. Dwarika Nath Ji to get the whole material from Durga Ji's house and give it also to him for utilization.

After more than two years time I was informed that the task was almost completed. My joy knew no bounds that the challenging task was, after all, completed by Shri Pandita Ji,

with the active help and support of Sh. Dwarkia Nath Ji. I know that the task could be completed by the blessings of Shrimaan Ji alone, and the credit, at the end, went to the lap of Shree Pandita Ji. I along with the host of devotees congratulate Shri Pandita Ji and feel indebted to him for completing our long cherished desire. I pray for his long, healthy and devotional life and our revered Gurudev may always be showering His blessings upon this capable pious soul. I, on my own behalf and on behalf of all my brother and sister devotees thank him from the core of my heart, for completion of our long pending and joint desire. My full ashirwards to Shri. D.N. Raina Ji also, who actively helped him in completing this pious work. This cherished desire of us all is being compiled during my lifetime itself is a source of great pleasure and solace for myself.

(Prof. N.N. Dhar)

13-05-2005 **Taya Ji**

Faridabad, Haryana

NOTE : Prof. N.N. Dhar, whom we call "Taya Ji" with respect, reverence and devotion, is the only authentic witness of the whole life of Shrimaan Shree Papa Ji Maharaj, as he remained with his association for more than sixty years – right from the starting days of His Sadhana to the end of his material life. I bow my head before him in reverence and gratitude, for writing this "Foreword" there by authenticating the events written in this book.

–Author

संगच्छध्वं, संवदध्वं, संवो मनांसि ज्ञानताम्
— ऋग्वेद

आशीर्वचन एवं लेखक परिचय

श्रीमान श्री पापाजी महाराज की जय !

श्रीमान जी के भक्तवर्ग की बहुत समय से यह इच्छा थी कि गुरुमहाराज की जीवनी को लिपिबद्ध किया जाए, ताकि हमारी और आगामी पीढ़ी के लिए यह मार्ग दर्शन का काम करती रहे। यद्यपि भक्तजनों में उच्चकोटि के विद्वानों की कमी नहीं थी, फिर भी श्रीमान जी के जीवन रूपी अथाह सागर की गम्भीरता का नापना किसी के बस की बात नहीं थी। कुछ लोगों ने तो कार्य का आरम्भ भी किया था, परन्तु सफलता प्राप्त न कर सके। श्रीमान जी की कृपा के बगैर जब कोई उनका फोटो भी खिंच नहीं सकता था, तो जीवनी लिखने का प्रश्न ही कहां उठता है? नियति ने इसका श्रेय श्रीमान जी के एक अनन्य भक्त श्री पण्डिता जी के भाग्य में ही लिखा था, अतः उन्ही के द्वारा यह काम पूर्णता को प्राप्त हो सका। हमें विश्वास है कि प्रातः स्मृणीय सद्गुरु महाराज की यही इच्छा थी। अतः हम पण्डिता जी को ही आभारपूर्वक बधाई का पात्र समझते है। लेखक का पूरा नाम श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित है। कश्मीर के अनन्तनाग ज़िले के एक प्रसिद्ध नगर कुलगाम के मुहल्ला रैणीपुरा में आपका जन्म आषाढ़ शुक्ल पक्ष द्वितीया को (वि० सम्वत १९९० में) उपमन्यु–शाण्डिल्य गोत्र में हुआ। ई० सन् के अनुसार यह २३ जून १९३३ आता है। इसी

द्वितीया के दिन सुप्रसिद्ध जगन्नाथपुरी तीर्थ पर भगवान जगन्नाथ जी की रथ यात्रा भी निकलती है।

घर में धार्मिक सत्सङ्ग का वातावरण तो होता ही रहता था, इसका प्रभाव बचपन से ही इन पर भी पडना स्वाभाविक ही था। घरेलू स्थिति निम्न–मध्यवर्ग के अन्तर्गत आती है। पण्डिता जी स्वभाव से सौम्य, शान्त, मननशील परोपकारी, स्वाध्यायी एवं गम्भीर हैं। इन्ही कारणों से विपरीत वातावरण में पलते हुए भी आपने हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं में एम०ए० की परीक्षाएं योग्यतापूर्वक उत्तीर्ण कर लीं। व्यवसाय से शिक्षा विभाग में आप आचार्य थे और प्रधानाचार्य के पद से सेवा निवृत्त हुए। कठिन से कठिन परिस्थिति में भी आप का धैर्य बना रहता है। १९९६ ई० की मकर संक्रान्ति के अवसर पर परेड जम्मू के गीताभवन में आयोजित एक भव्य समारोह में आपने धर्मपत्नी सहित विधिवत् "वान् प्रस्थ" आश्रम की दीक्षा ली। और तब से लेकर आप पूर्ण कालिक समाजसेवी का दायित्व निभा रहे हैं। उनके कुछ मुख्य वर्णन–योग्य दायित्व इस प्रकार हैं :

१. बहुआयामी सेवा प्रकल्प "संजीवनी शारदा केन्द्र" जम्मू के न्यासमण्डल के आप एक संस्थापक न्यासी हैं। तथा इसी की महोत्सव समिति के आप अध्यक्ष भी है।
२. इतिहास संकलन योजना जम्मू कश्मीर प्रदेश के आप उपाध्यक्ष है।
३. अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर वितरित होने वाली "द्वै मासिक पत्रिका" "वायस आफ जम्मू कश्मीर" (Voice of J&K) के आप अवैतनिक – प्रकाशक प्रबन्धक है।
४. कश्मीर विभाग के लिए राष्ट्रीय स्वयं–सेवक संघ के आप मा० संघचालक हैं।

५. मुट्ठी में निर्मित श्री गीता भवन में होने वाले दैनिक सत्सङ्ग के आप आचार्य हैं। तथा प्रसिद्ध स्वयमानन्द आश्रम में आपका साप्ताहिक गीता प्रवचन भी दो वर्ष से अधिक समय तक होता रहा। इन्ही कारणों से पास पड़ोस के लोग आप को आचार्य जी के नाम से जानते है।

६. उत्कृष्ट पारिजात आश्रम के आप सेवाकार है।

इस प्रकार अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित करके आपने अपना जीवन वास्तव में सफल बनाया है। मैं कामना करता हूं कि परम पिता परमात्मा तथा प्रातः स्मरणीय गुरुमहाराज के आप सदा–सर्वदा कृपा पात्र बने रहें। तथा निष्काम भावना से स्वस्थरूप में सुदीर्घ काल तक कल्याण–कार्य करते रहें। श्रीमान श्री पापा जी महाराज की पवित्र साधनात्मक जीवनी को लिखितरूप में मूर्तरूप देकर लेखक महोदय ने जो हमारी चिरकालिक इच्छा–आकांक्षा की पूर्ति की है, उसके लिए मैं अपनी ओर से, आश्रम से सम्बन्धित सभी भक्तजनों की ओर से पंडिता जी को आभारपूर्वक धन्यवाद देता हूं। यदि धर्मप्राण जनता–जनार्दन को किंचित अंश में भी यह पुस्तक किसी भी रूप में सहायक बन सके तो लेखक महोदय का यह सत्प्रयास सफल माना जाएगा।

हरि ॐ तत्सत् !

भवदीय

स्वामी शङ्करानन्द
उत्कृष्ट पारिजात आश्रम,
श्री राधा कृष्ण मंदिर परिसर
ढोके वज़ीरां, नगरोटा, जम्मू 181221
दूरभाष – 2673158

।। श्री गुरुस्तुतिः।।

ॐ ब्रह्मानन्दं परम सुखदं केवलं ज्ञान रूपम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्।।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सत्गुरुं तं नमामि।।१।।

स्मारं स्मारं जनिमृतभयं जात निर्वेद वृत्तिं।
ध्यायं ध्यायं पशुपतिमुमाकान्तमन्तर निषणम्।।
पायं पायं सपरिपरमानन्द पीयूषधाराम्।
भूयो भूयो निजगुरुपदाम्भोज युग्म नमामि।।२।।

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद् गुरूम्।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं सर्व संस्थितम्।।३।।

परात्परतरं ध्येयं नित्यं आनन्ददायकम्।
हृदयाकाश मध्यस्थं शुद्ध स्फाटिक संन्निभम्।।४।।

गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णुः गुरू साक्षात्महेश्वरः।
गुरुरेव जगत्सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।।५।।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।६।।

अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन शिलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।७।।

हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौरुष्टे न कश्चन।
सर्वदेव स्वरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।८।।

स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं यत्किञ्चित्सचराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।९।।

चिन्मयं व्यापितं सर्वं यत्किञ्चित्सचराचरम्।
तत्पदं दर्शित येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।१०।।

सर्वश्रुति शिरोरत्नः विराजित्पदाम्बुजम्।
वेदान्ताम्बुज सूर्यो यः तस्मै श्री गुरवे नमः।।११।।

चैतन्य शाश्वतः शान्तो व्योमातीतो निरञ्जनः।
बिन्दुंनादकलातीतः तस्मै श्री गुरवे नमः।।१२।।

ज्ञानशक्ति समारुदः तत्त्वमालाविभूषितः।
भुक्ति मुक्ति प्रदाता च तस्मै श्री गुरवे नमः।।१३।।

अनेकजन्मसंप्राप्तं कर्मबन्धविदाहिने।
आत्मज्ञान प्रदानेन तस्मै श्री गुरवे नमः।।१४।।

शोषणं भवसिन्धोश्च ज्ञापनं सार सम्पदः।
गुरोः षादोदकं सम्यक् तस्मै श्री गुरवे नमः।।१५।।

नगुरोरधिकं तत्त्वं न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।१६।।

मन्नाथः श्री जगन्नाथो मद्‌गुरु श्री जगत्गुरुः।
मदात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।१७।।

गुरूरादिरनादिश्च गुरू परम दैवतम।
गुरो परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।१८।।

शिष्यानां मोक्षदानाय लीलया देहधारिणे।
सदेहेऽपि विदेहाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।१६।।

नमामि सद्‌गुरुं शान्तं प्रत्यक्ष शिवरूपिणम्।
शिरसा योगपीठस्तं धर्मकामार्थ सिद्धये।।२०।।

श्री गुरुं परमानन्दं वन्दाम्यानन्द विग्रहम्।
यस्य सानिध्यमात्रेण चिदानन्दायते पुमान्।।२१।।

नमोऽस्तु गुरवे तस्मात्इष्टदेव स्वरूपिणे।
यस्य वागामृतं हन्ति विषं संसार संज्ञिकम्।।२२।।

श्री गुरुं ज्ञान सत्सिन्धुं दीनबन्धुं दयानिधिम्।
देव–मन्त्र प्रदातारं ज्ञानानन्दं नमाम्यहम्।।२३।।

नमस्ते नाथ भगवन् ! शिवाय गुरुरूपिणे।
विद्यावतार संसिद्धयैः स्वीकृतानेक विग्रहः।।२४।।

नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे।
सर्वाज्ञानतमो भेद भानवे चिद्धनायते।।२५।।

स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तनिग्रहाय परात्मने।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे।।२६।।

विवेकिनां विवेकाय प्रकाशाय प्रकाशिनाम्।
ज्ञानिनां ज्ञानरूपाय विमर्शाय विमर्शिनाम्।।२७।।

पुरस्तात्पार्श्वयो पृष्टे नमस्कुर्याम्युपरयुधः।
सच्चिदानन्दरूपेण विदेहि भवदासनम्।।२८।।

ध्यानमूलं गुरोः मूर्तिः पूजामूलं गुरोपदम्।
ज्ञानमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।२६।।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।३०।।

अहं देवो न चान्योरिस्म ब्रह्मैवाहं न शोकभाक्।
सच्चिदानन्द रूपोऽहं नित्य मुक्तः स्वभाववान् ।।३१।।

संसार–सागर–समुत्तरणैकमन्त्रम्।
ब्रह्मादि योगि–मुनि–पूजित–सिद्धिमन्त्रम्।
दारिद्रय–दुःख–भयरोग विनाशमन्त्रम्
वन्दे महाभयहरं गुरुराज मन्त्रम्।।३२।।

।। इति द्वात्रिंशत्श्लोकी गुरुस्तुति।।

श्री सद्गुरवे नमः ! कृष्णं वन्दे जगद्गुरूम्।

ॐ श्री परमात्मने नमः

प्रस्तावना

ॐ नमो ब्रह्मादिभ्यो, ब्रह्मविद्या सम्प्रदायकर्तृभ्यो
वंश ऋषिभ्यो, नमो महद्भ्यो गुरुभ्यः।।

किसी भी व्यक्ति की जीवनी लिखना बहुत ही कठिन कार्य है, क्योंकि लेखक को उस व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में प्रवेश करना पडता है। फिर भी लेखक की निजी रुचि, विचारधारा एवं योग्यता के मिश्रण का उस लिखित सामग्री पर कुछ न कुछ प्रभाव पडता ही है। परन्तु एक साधारण से व्यक्ति के लिए किसी सिद्ध महापुरूष की जीवनी लिखने का प्रयास करना तो सूई के छिद्र में से पूरा कपडे का थान निकालने के समान परिश्रम साध्य कार्य है। फिर भी दैवकृपा के बिना असफलता की सम्भावना बनी रहती है, क्योंकि गीता वचनानुसार पूर्णता का अंतिम कारण दैव की अनुकूलता अवश्यम्भावी है – "दैवं चैवात्र पंचमम्।" और वे महापुरुष जब सांसारिक प्रसिद्धि की ओर से सर्वथा उदासीन हूं, तो कार्य की पूर्णता में आने वाली कठिनाई का आप स्वयं ही अनुमान लगा सकते है।

वर्तमान समय के आत्मनिष्ठ सिद्ध महापुरुष श्रीमान श्री पापाजी महाराज एक ऐसे ही उदासीन महात्मा थे, जिनकी किसी

भी व्यक्तिगत अभिरुचि या महत्त्वाकांक्षा से कोई भी आश्रमवासी भक्त अवगत नहीं। उनके कई भक्तजनों ने उनके जीवनकाल में आज्ञा लिए बगैर ही कई बार उनका फोटो खींचने का प्रयास किया। परन्तु असफल रहे। उनकी स्वीकृति लेने पर ही बाद में उन्हें सफलता मिल सकी।

अब विधि का विधान देखिए कि यह महान कार्यभार अपने गुरुभाइयों एवं अन्य धार्मिक बन्धुओं के अनुरोध पर इस साधारण एवं अकिंचन व्यक्ति के कमज़ोर कन्धों पर डाला गया, जो अत्यन्त ही परिश्रम साध्य चुनौती है। अतः यह जन इस कार्य में सफलता के लिए विघ्न हर्त्ता तथा वाग्देवी के चरण कमलों पर नत मस्तक होकर आत्मसमर्पण करता है। फिर अन्तर्यामी प्रातः स्मृणीय गुरू महाराज से मौन स्वीकृति प्राप्त करने के लिए विनम्र प्रार्थना करता है ताकि वे स्वयं ही इस जन को निमित्त बना कर इस भगीरथ प्रयास को त्रुटिहीन रूप से सफलता प्रदान करें।

विस्थापन से कुछ वर्ष पूर्व भी अपने आश्रम के भक्तजनों ने इस लेखक को यह कार्य पूर्ण करने का आग्रह किया था। अतः यह लेखक श्री द्वारिका नाथ रैणा को साथ लेकर श्रीमानजी के चरणों में एक उचित समय पर उपस्थित हुआ और आश्रम वासी भक्तजनों की यह सामूहिक इच्छा प्रकट की। श्रीमानजी कुछ देर तक हमारी आंखों में आंखें डाल कर प्रसन्न मुद्रा में मुस्कराते रहे। फिर सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी और स्वयं ही अपने बचपन की कुछ घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन किया। श्री द्वारिका नाथ जी ने वे

महत्त्वपूर्ण बिन्दु लिख डाले। परन्तु उनके बहुत से शब्दों का वास्तविक अर्थ निकालने में हमें बहुत समय लग गया। इसी बीच में सम्पूर्ण कशमीरी पण्डित सम्प्रदाय को इस्लामी आतंकियों और उनका तुष्टीकरण करने वाले देश द्रोही त्त्वों द्वारा अत्यन्त कष्टप्रद तथा ह्रदयविदारक देश निष्कासन का कष्ट सहना पडा। सम्पूर्ण समाज के साथ–साथ सब बन्धु एवं भक्तजन बिछुड भी गए और बिखर भी गए। कौन कहां पहुंचा, कई महीनों तक पता ही न चल सका। इसी कष्टकर समय में श्रीमान जी को भी विचित्र घटनाक्रम में ब्रह्मलीन होना पडा, जिसका वर्णन यथावसर किया जाएगा। कई महीनों के बाद ही कुछ भक्तजनों का पुनर्मिलन सम्भव हो सका। उन्होंने श्रीमानजी का जन्मदिवस तथा महासमाधि दिवस कई वर्षों तक श्री राम कृष्ण अद्वैत आश्रम उधूवाला में सामूहिक रूप से मनाया। आश्रम के संस्थापक एवं अभिभावक श्रद्धेय शक्ति चैतन्य जी महाराज ने हर प्रकार से सहयोग दिया। उनकी महासमाधि लेने तक यह काम वहीं निर्बाद रूप से चलता रहा। इतने में श्रीमानजी के ही एक प्रमुख सन्यासी भक्त स्वामी शंकरानन्द जी ने नगरोटा गांऊ में श्रीमानजी के नाम पर ही आश्रम का निर्माण कार्य सम्पन्न किया। अतः तब से उसी आश्रम में उनकी जयन्ती एवं पुण्य तिथि के दिनों को मनाया जाने लगा।

श्रीमान जी की जीवनी लिखने की फिर से चर्चा होने लगी। और ज्ञात हुआ कि उनकी एक महिला भक्त श्रीमती दुर्गाजी ने काम प्रारम्भ किया है। इस लेखक ने भी उनको हर प्रकार के सहयोग देने का अश्वासन दे दिया। कुछ प्रयास उसके द्वारा

सम्भव भी हुआ, परन्तु दुर्भाग्यवश उनका स्वास्थ्य बिगड गया और कई महीनों तक अस्वस्थ रह कर उन का भी देहावसान हो गया।

सांसारिक झंझटों एवं अन्य व्यस्तताओं में पडकर हम इस कार्य से कुछ उदासीन ही रहे। फिर गुरुकृपा से गतवर्ष एक सुयोग प्राप्त हुआ जिसके कारण इस पवित्र कार्य की ओर फिर से आकर्षित होना पडा। १ नवम्बर २००१ में इस लेखक को अपनी धर्मपत्नी सहित हरिद्वार में आयोजित एक वानप्रस्थ सम्मेलन में भाग लेने के लिए जाना पडा। निश्चित कार्य योजना के अन्तर्गत श्री द्वारिका नाथ जी भी अपने दिल्ली प्रवास के बाद हरिद्वार पहुंचे। फिर हम तीनों वहां से कुछ दिनों के लिए ऋषिकेष आश्रम पहुंचे, जहां उन दिनों बहुत समय से अपने वरिष्टतम गुरुभाई (जो अपने जीवन के दसवें दशक में चल रहे है।) श्रद्धेय श्री ताया जी वानप्रस्थ आश्रम में निवास करते थे। उस एकान्त, शान्त एवं पवित्र परिसर पर पहुंच कर पुनः श्रीमान जी की जीवनी लिखने की चर्चा हुई। और श्री ताया जी की सत्प्रेरणा से इस सत्कार्य का संकल्प मन में पुनः जागृत होगया। और उनके ही प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद से इस काम का शुभारम्भ हुआ।

ताया जी ने कुछ वर्ष पूर्व दिल्ली से प्रकाशित "कोशुर समाचार" पत्रिका में श्रीमान जी के जीवन सम्बन्धी एक लेख प्रकाशित करवाया था। उसकी प्रतिलिपि भी प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त उन के द्वारा लिखे गए दो लम्बे पत्रों की प्रतिलिपि भी उन्होंने हमे प्रस्तुत कर दी जो उन्हों ने इसी से सम्बन्धित श्री

अजनाथ जी तथा श्रीमती दुर्गा जी को अलग अलग समय पर लिखे थे। इस सब से इस लेखक ने पूरा लाभ उठाया, जो इस पुस्तक लेखन की बुनियाद बन सकी। इस मार्ग दर्शन के लिए मैं श्री ताया जी को प्रणाम करतें हुए सच्चे हृदय से आभार प्रकट करता हूं और उनके स्वस्थ दीर्घायु की कामना करता हूं। श्रीमती दुर्गा जी की अधूरी लेखन सामग्री भी प्राप्त हुई जिस से महत्त्वपूर्ण जानकारी भी मिल गई। मैं उनका भी आभार प्रकट करते हुए उनकी दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिए परमात्मा एवं गुरुमहाराज से प्रार्थना करता हूं। श्रीमान जी के एक भक्त श्री शम्भूनाथ रैणा हरमैन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने श्रीमान जी द्वारा लिखित एक लुप्तप्राय कशमीरी लीला की प्रतिलिपि लेखक को समय पर उपलब्ध कराई। इस लीला का नागरी लिपि में रूपान्तरण करके परिशिष्ट के अन्तर्गत प्रकाशित किया जा रहा है। मैं अपने सभी गुरुभइयों को धन्यवाद देता हूं,जिन्होंने व्यक्तिगत रूप से श्रीमान जी के जीवन सम्बन्धित बहुत सी जानकारी प्राप्त कराई। श्री स्वामी शंकरानन्द जी ने सभी गुरुभक्तों एवं अन्य धर्मप्राण जनता जनार्दन पर बडा ही उपकार किया है, जिन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी अत्यन्त परिश्रम करके श्रीमान जी के नाम पर नगरोटा गांऊ में एक आश्रम का निर्माण किया। यही स्थान अब हमारा एकत्रित होने का केन्द्र बन चुका है, जहां अब हम श्रीमान जी का जन्म दिन एवं पुण्य तिथि मनाते हैं। आश्रम के अभिभावक के रूप में उन्होंने इस लेखक का परिचय सहित आशीर्वचन भी प्रकाशनार्थ भेज दिया है, जिसे आभारपूर्वक स्वीकारते हुए यथा स्थान प्रकाशित

किया गया है। श्रीमान जी के एक प्रमुख भक्त श्री द्वारिका नाथ रैणा ने इस पुस्तक के लिखने एवं प्रकाशित करवाने में जो अमूल्य सहयोग प्रदान किया है, प्रूफ रीडिंग और अन्य प्रकार की दौडधूप की है, उसके लिए मैं उनका आभार प्रकट करते हुए यह स्वीकार करता हूं कि उनके सहयोग के बगैर कदाचित इस पुस्तक का इस रूप में प्रकाशित होना सम्भव न हो पाता। आश्रम में आप श्रीमान जी की सेवा करने में तत्पर रहते थे। परमेश्वर एवं सद्‌गुरुदेव की अनुकम्पा का यह सुयोग्य पात्र सदा बना रहे, इसी कामना के साथ मैं उनका पुनः आभार प्रकट करता हूं।

आज से लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व जब हम श्रीमान जी से उनकी जीवनी लिखने की स्वीकृति लेने के लिए उन से मिले थे तो उन्होंने मुस्कान पूर्वक मौनस्वीकृति देते हुए एक विलक्षण सी बात कही थी, जो हमें इस समय याद आ रही है। उन्होंने कहा था:

"बहुत समय पूर्व मार्कस (Marx) नामी व्यक्ति ने एक नया ही जीवन दर्शन प्रस्तुत किया था। परन्तु संसार में उसको कौन जानता था? तुम्हें पता है कि संसार भर में उसकी प्रसिद्धि कैसे हुई? उसके जीवन दर्शन को लिखकर उनके एक अनुयायी भक्त ने संसार भर में फैलाया। और वह अनुयायी था 'लेनिन'।"

यह कहकर वे हमारी आंखों में आखें डालकर देर तक अपूर्व ढंग से मुस्कराते रहे।

उस समय उस कथन का हम कोई अर्थ नही निकाल सके।

मूढभाव से हम भी कुछ देर तक हंसते रहे। परन्तु उनके ब्रह्मलीन होने के तेरहवर्ष बाद जब हम उनकी जीवनी को अंतिमरूप देने में सफल हुए तो हमारा शीर्ष अनायास ही उनके श्रीचरणों में पुष्पार्चण रूप में प्रणत हो जाता है। और उनकी भविष्यवाणी को पूर्ण होती हुई देखकर, कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान के शब्दों में केवल इतना ही निवेदन कर सकते है कि :

चरणों पर है अर्पण इसको, चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो।।

ॐ ! शम !!

विनीत

लेखक

गीता आश्रय
४२६—ए, विनायक नगर – २
मुटठी गांव, जम्मू
दूरभाष – २५६१८८२

नोट : यह पुस्तक तीन वर्ष पूर्व २००३ ई० में श्रीमान जी की जन्म शताब्दी वर्ष में ही पूर्ण हुई थी, परन्तु तत्काल प्रकाशित न हो सकी। अब इसके प्रकाशित होने पर हम अपार आनन्द का अनुभव कर रहे है।

—लेखक

प्रथम अध्याय

जन्म

श्रीनगर कश्मीर के सफाकदल के खानकाह–ए–सोक्तः इलाके में एक धर्मात्मा व्यक्ति निवास करता था। नाम था कण्ठनाथ दर। आसपास के लोग इन्हें कंठजू के नाम से पुकारते थे। जू कश्मीरी भाषा में हिन्दी के आदरसूचक शब्द 'जी' का ही रूपान्तर है। परिवार जन इन्हे प्रेम से काकमोल कहते थे। वे श्रीनगर के महालेखाकार के कार्यालय में काम करते थे। इनकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती कुदमाली था। जो बादीपोरा, बडगाम के एक प्रतिष्ठित 'भट्ट' परिवार की सुकन्या थी। भारद्वाज गोत्र का 'साहिब दर' जाति का यह परिवार बडा ही प्रतिष्ठित एवं धार्मिक विचार धारा का था। इस दम्पति के चार संतान पैदा हुए। बडें पुत्र का नाम नन्दलाल रखा गया। परन्तु बाद में विद्यालय के रिकार्ड में पता नहीं उसका नाम कैसे जानकी नाथ लिखा गया। यही पुत्र बाद में 'श्री पापा जी महाराज' के नाम से प्रसिद्ध हुए। दूसरी संतान बटनी नाम की पुत्री थी। तीसरा संतान जगन्नाथ कहलाया और चौथा हृदय नाथ। जगन्नाथ का सहपाठी मुहल्ले के दूसरे घर का बेटा निरञ्जन नाथ दर था। जो अपने सहपाठी जगन्नाथ के हां आया जाया करता था। वहां उसका सम्पर्क उसके बडे भाई श्री जानकी नाथ के साथ हुआ। श्री जानकी नाथ जी की विचार धारा, बातचीत एवं आचार–विचार से यह लडका (निरञ्जन नाथ) भी

बहुत प्रभावित हुआ और बाद में उनका मुख्य सेवाकार भक्त बन गया। घर और बाहर के लोग उसे प्रेम से ताया जी के नाम से पुकारते थे। और वे आज तक उसी नाम से प्रसिद्ध हैं। हम सब आश्रम वासी भक्तों में भी आप इसी 'ताया जी' के नाम से परिचित हैं।

श्रीमान श्री पापा जी महाराज (श्री जानकी नाथ साहिब दर) का जन्म वैशाख कृष्ण पक्ष सप्तमी तदनुसार वि०सं० १६५६, सप्तर्षि सं० ४६७८ एवं ई० सन् २८ अप्रैल १६०२, सोमवार सायं सात बजकर चालीस मिनट (7.40 pm) पर हुआ। अतः आज कल इन की जन्म शताब्दी चल रही है।

श्रीमान जी के बचपन की शिक्षा पासवाले एक मकतब से प्रारम्भ हुई। मकतब उन पाठशालाओं को कहते है जहां फारसी–उर्दू की शिक्षा दी जाती थी। इसकारण श्रीमान जी ने उर्दू–फारसी का खूब ज्ञान प्राप्त किया। वही उन्हों ने प्रद्धि फारसी ग्रन्थों गुलिस्तान–बोस्तान का भी अध्ययन किया। वे पांच वर्ष की आयु के ही थे जब अंग्रेज़ी भाषा का पठन–पाठन शुरू हो गया। इन्होंने भी श्री कार्ले नामक एक ईसाई अध्यापक से अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। औपचारिक शिक्षा के लिए इन्हें मिशन स्कूल फतेहकदल में प्रविष्ट कराया गया। वहां और अध्यापकों के अतिरिक्त प्रसिद्ध अंग्रेज़ अध्यापक 'लूसी' महोदय इन्हे अंग्रेजी भाषा पढाने लगे। अत्यन्त प्रतिभाशाली विद्यार्थी होने के कारण श्रीमान जी लूसी महोदय के प्रियतम छात्र बन गए। श्रीमान जी भी उन्हें अत्यन्त आदर तथा सम्मान देते थे। इस विद्यालय में श्रीमान जी ने तत्काल प्रचलित सभी विषयों अंग्रेज़ी फारसी, उर्दू, गणित का

अच्छा ज्ञान प्राप्त किया। इसी विद्यालय द्वारा उन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से सन् १६२१ ई० में मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। इन्ही दिनों सम्भवतः पूर्वकर्मों के कारण श्रीमान जी पर अध्यात्मिकता का प्रभाव पडना आरम्भ हुआ था और वे सांसारिक कार्यों से कुछ कुछ उदासीन होने लगे थे। परीक्षा के दिनों में भी पढ़ाई से अधिक 'नन्दपुरी' कोडियों का खेल खेलने में रुचि लेने लग गए थे। फलतः परीक्षा में केवल पास होने के लिए बराबर निम्न तम् अंक लेकर ही पास हुए। न एक अंक कम और न अधिक। केवल २३४ अंक। इसका कदाचित यह कारण भी हो सकता है कि दस वर्ष की अवस्था में ही इन्हे मेरठ नगर निवासी एक अज्ञात मार्गदर्शक मिल चुके थे। उनका नाम श्री सत्यानन्द था। यह वर्णन उन्होंने स्वयं किया है।

मैट्रिक पास करने के बाद श्रीमान जी ने निश्चय किया कि नौकरी करके अपने पिता जी का हाथ बटाया जाए, जिसे अकेले ही एक बडे परिवार का पालन पोषण करना पड रहा था। अतः पहले उन्होंने श्री प्रताप स्कूल में अध्यापक का काम किया। तत्पश्चात वे क्वापरेटिव विभाग में काम करने लगे। फिर उन्होंने कुछ समय के लिए रिसेप्शन विभाग में भी काम किया। और अंत में प्रांतीय महालेखाकार के कार्यालय में उनकी नियुक्ति हुई और उन्हे राजपूत बोर्डिगं स्कूल जम्मू में लेखाकार के रूप में नियुक्त किया गया। इसी कार्यालय में उन्हे अपनी योग्यता एवं अभिरुचि को परखने का अवसर प्राप्त हुआ।

वे बडी तत्परता एवं ईमानदारी के साथ कार्यालय का काम

करते थे। अनुशासन चलाने में वे अपने अधिकारी को सत्परामर्श देकर सहायता भी करते थे। इसी कारण सभी कर्मचारी और अधिकारी उनसे बहुत ही संतुष्ट थे। कुछ कर्मचारी स्वेच्छा से पुराने दस्तूर के अनुसार कुछ धन इन्हे पेश करते थे, परन्तु वे दृढता से इसे अस्वीकार करते थे। फिर भी कुछ लोग आग्रहपूर्वक कुछ धनराशि इनके मेज़ पर छोडकर चले जाते थे। ऐसी सब धन राशि को श्रीमान जी एकत्र करके एक रजिस्टरी पर दर्ज करके सरकारी कोष में डाल देते थे। कार्यालय के कुछ सहयोगी कर्मचारी समझते थे कि ऐसी ऊपर की आमदनी श्रीमान जी स्वयं अकेले ही हडप जाते हैं। अतः एक दिन इन सब कर्मचारियों ने मिलकर अपने अधिकारी के समक्ष यह शिकायत की कि जानकी नाथ यह ऊपरी आमदनी स्वयं ही खा जाते हैं। महालेखाकार ने इस सारी शिकायत की ठीक जांच कराई। जब उन्हों ने वास्तविकता जान ली तो उनकी अपूर्व ईमानदारी से वे बहुत प्रभावित भी हुंए और संतुष्ट भी हुए। उन्होंने श्रीमान जी की भूरि भूरि प्रशंसा की और उनके पदोन्नति का आदेश भी दिया। यह सब देखकर सब सहयोगी कर्मचारियों ने श्रीमान जी से लज्जित होकर क्षमा याचना की। परन्तु श्रीमान जी ने इस सब को साधारण घटना कहकर टाल दिया और सब के साथ मैत्रीपूर्वक व्यवहार किया जैसे कुछ हुआ ही न हो। कार्यालय से सम्बन्धित कुछ और अपूर्व घटनाएं भी हैं जिनका यथा स्थान वर्णन किया जाएगा। १६५८ ई० में वे सरकारी काम से सेवा निवृत्त हुए और उसके बाद का सारा जीवन उन्होंने गृहस्थी होते हुए भी एक वानप्रस्थी या सन्यासी के रूप में ही व्यतीत किया। इति।

अध्याय २

निजी परिवार

श्रीमान श्री पापा जी का जन्मजात मकान खानकाहि–सोक्ता मुहल्ले में था, जहां वे १९४७ ई० तक रहते थे। फिर वे कोतवाल नामक घराने में कुछ समय के लिए कर्णनगर में रहने लगे। वहां से निकल कर कुछ समय के लिए वे राज़दानों के घर में किरायादार के तौर पर रहे। इसी प्रकार उन्होंने कई किराए के घर बदल दिए और बरबरशाह तथा बालगार्डन में भी कुछ देर तक रहते रहे। अंत में उनके पुत्र ने छानपोरा–नटीपोरा कालोनी में अपना मकान बनाया जहां जीवन के अंत तक शारीरिक रूप से उन्होंने निवास किया। ये सभी स्थान श्रीनगर महानगर में ही आते हैं।

श्रीमान जी के जीवन में तीन विवाहों का संयोग हुआ। पहला विवाह बीस वर्ष की अवस्था मं कावडारा श्रीनगर निवासी श्री महेश्वर कौल की सुशीला पुत्री के साथ हुआ। कन्या अत्यन्त सुन्दर एवं सर्वगुण सम्पन थी। पति–पत्नी का जीवन बहुत ही रुचिकर एवं मधुर सम्बन्धित था। उनकी कोख से मोहिनी नाम की एक सुपुत्री नें जन्म लिया। परन्तु भाग्यवश पुत्री दो साल की ही थी कि उसकी माता का टी०बी० रोग के कारण देहान्त हो गया। मोहिनी जी का बडा होने पर सत्थू बरबरशाह के पंजाबी नामक

परिवार में विवाह किया गया। इसके बाद निजी इच्छा न होने पर भी माता–पिता की इच्छा को शिरोधार्य करके दूसरा विवाह भी किया। कन्या के पिता का नाम कण्ठकौल शराबी था। परन्तु कन्या शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ थी। इतना होने पर भी पति ने उसे भरपूर प्यार दिया और अच्छी तरह से पालन पोषण करके अपना कर्त्तव्य निभाया। उन्होंने उसे आश्वस्त किया कि वह भाग्यशाली महिला है क्योंकि उसे योग्यता से देख भाल करने वाला पति मिल गया है। जब श्रीमान जी का परिवर्तन जम्मू के लिए हुआ, उन्ही दिनों में इस दूसरी पत्नी का भी संतानहीन रूप में ही मामूली बीमारी के कारण देहान्त हो गया। इस समय तक जम्मू में श्रीमान जी साधना के कठिनकाम में लग चुके थे। अतः तीसरी शादी के लिए पूर्णरूप से रुचिहीन हो चुके थे। अतः पिता जी ने जब ऐसा प्रस्ताव भेजा तो उन्होंने साफतौर पर मना कर दिया। परन्तु माता पिता ने आग्रहपूर्वक हठ किया और बहुत ही दबाव डाला। श्रीमान जी की उस समय केवल तीस वर्ष की ही आयु थी और कोई पुत्र भी नहीं था। अतः प्रत्येक पिता की भांति उनके पिता का भी आग्रहपूर्वक दबाव डालना स्वाभाविक ही था। अन्ततः पिता जी के धमकी भरी हठ वादिता के कारण आज्ञाकारी पुत्र के रूप में श्रीमान जी ने तीसरा विवाह करना स्वीकार तो किया परन्तु चेतावनी पूर्वक सावधान भी किया कि दोनों के आयुमें ज्यादा अन्तर भी नहीं होना चाहिए। परन्तु होनी को कौन टाल सकता है? तीसरा विवाह आलीकदल के टुकरा नामक परिवार की एक सुशील कन्या के साथ हुआ। पति–पत्नी की आयु में बहुत

अन्तर था। उसका नाम जनक रानी रखा गया। घरवाले एवं भक्तजन उन्हे काकनी के नाम से पुकारते थे। उनकी कोख से एक पुत्र मिठन लाल जी तथा दो पुत्रियां निर्मला और गिरिजा उत्पन्न हुई। समय आने पर इन सब को विवाह संस्कार से विभूषित किया गया। मिठन लाल जी लोक सेवाविभाग में कनिष्ठ अभियन्ता नियुक्त हुए। तथा उन्होंने दूधगंगा छानपोरा में मकान बनाया। यही स्थांन श्रीमान जी का अंतिम विश्रामस्थल बन गया। और इसी मकान में १९९० ई० के कष्टकर वातावरण के माहोल में श्रीमान जीने यह पंच–भौतिक शरीर विसर्जित किया और स्वयं ब्रह्मलीन हो गए। काकनी का भी आज से तीन वर्ष पूर्व दिल्ली में देहावसान हुआ। और मिठन लाल जी का भी दो वर्ष पूर्व दिल्ली में ही एक दुर्घटना में निधन हो गया। उनका एक पुत्र और पुत्री है, जिनका विवाह हो चुका है, और अब बाल बच्चेवाले होकर फरीदाबाद और दिल्ली में रहते है।

यही है संक्षेप में श्रीमान जी के निजी परिवार का पूर्ण परिचय।

अध्याय ३

विद्याध्ययन एवं साधना

जैसा कि पहले ही लिखा गया है कि श्रीमान जी की प्राथमिक शिक्षा एक मकतब में हुई जहां उन्होंने फार्सी उर्दू की अच्छी जानकारी प्राप्त करली। फार्सी भाषा में उनकी अधिक रुचि उत्पन्न हुई और उन्होंने स्वयं ही इस भाषा के कुछ प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन किया।

व्यावहारिक शिक्षा के लिए उन्हें मिशन स्कूल फतेहकदल में भर्ती किया गया। जहां से उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास कर ली। इस विद्यालय में उन्होंने और विषयों के साथ–साथ अंग्रेज़ी और गणित में विशेष दक्षता प्राप्त कर ली और फिर नौकरी करके पिता जी की परिवार–पालना में सहायता करली।

उन दिनों प्रसिद्ध सोमयार मन्दिर के परिसर में एक पाठशाला चलाई जा रही थी। ३२ वर्ष की अवस्था में श्रीमान जी ने उसी पाठशाला में देवनागरी लिपि का ज्ञान प्राप्त कर लिया और वहीं हिन्दी और संस्कृत भाषाओं में भी दक्षता प्राप्त कर ली। इसके बाद संस्कृत वाङ्मय के कुछ ग्रन्थों का स्वयं ही अध्ययन किया, जिनमें ब्रह्मसूत्र, श्रीमद्भगवद्गीता और भागवत् महापुरान का उल्लेख करना आवश्यक है। स्वाध्याय की ओर उनकी रुचि स्वाभाविक ही थी, अतः उन्होंने उर्दू–हिन्दी, अंग्रेज़ी–फारसी और कश्मीरी भाषाओं

की प्रमुख पुस्तकों का गम्भीरता के साथ अध्ययन किया। स्मरण शक्ति उनकी बडी तीव्र थी। एक बार जो भी पुस्तक उनकी दृष्टि में आ जाती थी, कण्ठस्थ हो जाती थी। कालिदास निर्मित साहित्य में उन्होंने "अभिज्ञान–शाकुन्तलम्" तथा "कुमार–सम्भवम्" का गम्भीरता के साथ अध्ययन किया था और प्रमुख श्लोकों तथा घटनाओं को कण्ठस्थ किया था। जीवन के अंत तक वे सभी पढ़े हुए ग्रन्थों का यथावसर संदर्भ सहित उद्धरण देते थे। इन पंक्तियों के लेखक को कई बार उन्होंने उन सब ग्रन्थों का उद्धरण दिया है। एक बार कशमीरी भाषा में लिखे गए रामायण का न केवल उद्धरण ही दिया अपितु पृष्ठ संख्या तथा पंक्ति–संख्या तक भी बता दी। इस ग्रन्थ को उन्होंने युवावस्था में पढ़ा था। इसी प्रकार अभिज्ञान शाकुन्तलम् तथा सूफी कवियों की कविताओं का वे सहजता के साथ उल्लेख करते थे। वर्णन करने की कला उनकी अभूतपूर्व थी। प्राचीन घटनाओं का इस प्रकार उल्लेख करते थे जैसे उन्ही के सामने ये घटनाएं घट चुकी हों। शिव, जगदम्बा राम या कृष्ण से सम्बन्धित घटनाओं का ऐसे वर्णन करते थे, जैसे उस समय वे स्वयं वहां उपस्थित थे। पुस्तकों–ग्रन्थों का उद्धरण वे इस प्रकार देते थे जैसे ये सब उन्होंने ही लिखी हूं। विषयों का वर्णन ऐसे करते थे जैसे ये विचार उन्हीं के हों। शालीनता, गम्भीरता एवं आत्मविश्वास के साथ वर्णन करते समय ऐसा शब्द–चयन करते थे कि श्रोताओं के अन्तर्मन में बात चिपक जाती थी।

उन्होंने दो बडी कापियाँ रखी थीं, जिन में प्रमुख ग्रन्थों के उद्धरण, उन पर टिपणियां दर्ज की थीं। कश्मीर के प्रमुख भक्त कवियों तथा सूफी संतों से वे प्रभावित थे, और उनसे सम्बन्धित कुछ जानकारी उन कापियों पर दर्ज की थी। ऐसे भक्तों एवं सूफी संतो में प्रमुख रूप से वर्णन योग्य हैं : रूपा भवानी, मिर्ज़ा काक, कशकाक, आत्माराम, परमानन्द, कृष्ण राज़दान, प्रकाश राम, ललद्यद, नुन्द ऋषि, अहद ज़रगर, स्वच्छ क्राल तथा हबीबुल्ला नौशहरी।

यद्यपि उन्हों ने वेदान्त दर्शन के अनुरूप ही अपना जीवन व्यतीत किया था और पातञ्जल योग दर्शन के आधार पर ही सिद्धि प्राप्त कर ली थी, तथापि कश्मीर के शैव दर्शन के आप पूर्ण ज्ञाता थे। और प्रमुख शैवाचार्यों यथा उत्पलदेव, सोमानन्द तथा अभिनवगुप्त द्वारा लिखित साहित्य का श्रद्धा पूर्वक वर्णन भी करते थे और उद्धरण भी देते थे। हमारी समझ में वेदान्त और शैव दर्शन में उन्हें समानता ही लगती थी। अपने समय के जीवित सन्तों और सिद्ध पुरुषों से उनका पूर्ण परिचय और तालमेल था। इस का उल्लेख उन्होंने स्वयं इन पंक्तियों के लेखक से कम से कम दोबार किया हैं, और यह भी स्वीकारा है कि अध्यात्मिक सूक्षम रूप से इस जगत का संचालन करने वाले सिद्ध पुरुषों में उनका भी कोई प्रमुख स्थान है। ऐसी बातों की जब वे अनायास ही चर्चा करते थे तो शीघ्र ही इस परिचर्चा को लगाम देते थे और श्रोताओं को उन्य भौतिक भूल–भुलइयों में डाल देते थे। परन्तु ताडने वाले बहुत कुछ जान जाते थे।

यद्यपि वे सांसारिक कार्यक्रमों में उलझे हुए से दिखते थे, तथापि साधना के लिए समय वे निकाल ही देते थे। श्रीमान जी के स्वयं के ही कथनानुसार उन्हे दस वर्ष की ही अवस्था में सत्यानन्द नामक एक मार्ग–दर्शक संत मिले थे, जिन्हों ने इन के साधना पथ को प्रशस्त किया था। श्रीमानजी इनको अपना प्रथम अपरिचित मार्ग–दर्शक स्वीकारते थे। बाद में जब उनकी नियुक्ति जम्मू के राजपूत बोर्डिंग स्कूल में लेखाकार के रूप में हुई तो उन्हें वहां एक बडे भवन के पिछवाडे में एक छोटा सा तिकोना कमरा निवास के लिए मिला था। इसको वे एक 'क्यूबिकल' कहते थे। इसी कमरे में उन्होंने घोर तपस्या की थी और रात्रि कें आराम एवं निद्रा को तिलाञ्जलि दी थी। इसी छोटे से सुविधाहीन कमरे में उन्होंने वह सब कुछ करके दिखाया जो साधारण मनुष्य के लिए न केवल कठिन अपितु असम्भव सा लगता है। इस साधना समय में उन्होंने भोजन पर पूर्ण नियन्त्रण कर लिया था। नमक का पूर्णतया ही त्याग किया था। केवल दुग्धाहार और फलाहार पर ही गुज़ारा होता था। यौगिक क्रियाओं में आहार पर पूरा नियन्त्रण करना पडता है, अन्यथा सिद्धि प्राप्ति में बाधा पडती है। इस अवस्था में वे दिन को कार्यालय का कामकाज बडी योग्यता एवं तत्परता से किया करते थे तथा प्रधानाचा़र्य के०कालासिंह को प्रशासन चलाने में पूर्णरूप से सहयोग और सत्परामर्श भी देते थे। शारीरिक रूप से पूर्णतया हशाष–बशाष लगते थे और किसी को स्वप्न में भी इस बात का किंचिन्–मात्र भी यह आभास नहीं मिलता था कि ऐसे स्वस्थ एवं प्रसन्नवदन नवयुवक की रात्रि का समय घोर साधना में

लगा हुआ था। इस साधना का एकमात्र साक्षी एक ही व्यक्ति है जो उस समय से ले कर उनके भौतिक जीवन के अंत तक उनका साथी–सेवक रहा है –– और वे हैं हमारे वरिष्ठतम गुरुभाई, 'श्रीमान ताया जी' जो इस समय जीवन के नववें दशक में चल रहे हैं। उन्ही के द्वारा हमें यह सारी जानकारी प्राप्त हुई है। यह छोटा सा क्यूबिकल कमरा ही श्रीमान जी की तपोभूमि बन गई है और इसी में उन्हें सिद्धावस्था प्राप्त हुई है। साधना और तपस्या जब सफलता के समीप पहुंच रही थी तो श्रीमान जी ने इस साधना कक्ष में एक प्रपत्र लटकाया हुआ था उस स्थान पर जहां साधना समय सीधे उनकी दृष्टि पड जाती थी। उस पर लिखा हुआ था

"Alert ! Realization at hand".

इसके बाद जब उन्होंने श्रीनगर के लिए अपना तबादला करवाया, तो उस समय तक वे पूर्ण सिद्ध बन चुके थे। शारीरिक रूप से वे संसार के सभी कर्त्तव्य तत्परता तथा योग्यता से निभा रहे थे। उनके बाल–बच्चे भी हुए, गृहस्थ का पालन–पोषण भी होता रहा, सरकारी नौकरी का कामकाज भी योग्यतापूर्वक चलता रहा – और साथ ही साथ में साधना का कठिन काम भी चलता रहा। ऐसा ही था इस सिद्ध पुरुष का अलौकिक जीवन। कश्मीर में पहुंच कर अपनी सिद्धि को परिपक्व बनाने के लिए उन्होंने एक लम्बा अवकाश ले लिया और आनन्तनाग ज़िले के प्रसिद्ध "गुसाई गुण्ड" आश्रम में रहने के लिए चले गए। उस आश्रम के निर्माता

एवं अभिभावक प्रसिद्ध सिद्ध पुरुष स्वामी आत्माराम जी थे, जो उन दिनों उसी आश्रम में रहते थे। उन्होंने स्वयं ही श्रीमान जी का स्वागत–सत्कार किया, तथा आश्रम में बनी दूसरी धर्मशाला के दूसरे या तीसरे मंजिल में एकान्त कमरे में उनके बैठने और रहने की व्यवस्था की, साथ ही उनके लिए सात्विक दुग्धाहार का भी प्रबन्ध कर लिया। इसी स्थान पर इनको सिद्धि की परिपक्व अवस्था की प्राप्ति हुई। सम्भवतः वे बहुत काल तक वहीं रह जाते और विश्राम कर लेते, यदि इस में व्यवधान न पडता। हुआ यह कि श्री ताया जी, दो और साथियों को लेकर उनसे मिलने के लिए उसी आश्रम में चले गए। कुछ दिनों के बाद उन्होंने समीपस्थ कुछ प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा पर जाने का प्रस्ताव रखा। श्रीमान जी ने सहर्ष इस प्रस्ताव की स्वीकृति दे दी। इन तीर्थ स्थानों में कुलगाम का प्रसिद्ध कुलवागेश्वरी का मंदिर, देवसर की पहाड़ी पर बना हुआ त्रिपुरा सुन्दरी का प्रसिद्ध –– खन्न–बरनी का तीर्थस्थल, मंज़गाम का प्रसिद्ध क्षीर भवानी तीर्थ तथा पास–पडोस के अन्य छोटे–बडे तीर्थस्थान आते है। इन सभी स्थानों की यात्रा उन्होंने बडे चाव से की, इस यात्रा का वर्णन उन्होंने इस लेखक के साथ भी दो तीन बार किया। इन तीर्थों का वर्णन करते समय उनका मुख मण्डल एक अलौकिक चमक और प्रसन्नता पूर्वक आलोक से भर जाता था। इसके अतिरिक्त श्रीनगर लौटने पर प्रायः वे तुलमुला, वुत्शन, मनिगाम, लार, हारीपर्वत, शंकराचार्य पर्वत एवं अन्य तीर्थस्थलों पर भी जाया करते थे। पंचतन्त्रकार ने एक स्थान पर लिखा है – "महाजनो येन गता सः पन्थः"। अर्थात जन

साधारण महापुरुषों का ही अनुकरण करते हैं। कदाचित श्रीमान जी इसी कारण सिद्धावस्था की प्राप्ति के बाद भी तीर्थस्थलों की यात्रा करना, पाठ–पूजा, साधु–संगति सेवा कार्य तथा विभिन्न धार्मिक एवं लौकिक व्यावहार्य कर्त्तव्य निभाते रहते रहे। जब वे सत्थू–बरबरशाह के गौरी–शंकर मंदिर में बने अपने आश्रम में पधारते थे तो प्राङ्गण में स्थित बडे चिनार के वृक्ष की परिक्रमा करते समय ज़ोर ज़ोर से पुकारते थे "गौरी–शंकर, गौरी शंकर, गौरी शंकर पाहिमाम्। राधा कृष्ण, राधा कृष्ण, राधा कृष्ण, रक्ष माम्।"

साधू–सन्तों की वे विशेष रूप से सेवा करते थे। उन्हें बुलाना, खिलाना–पिलाना, और दक्षिणा देकर सम्मान पूर्वक विदा करना उनका नियम बन चुका था। वे भक्तों को भी परामर्श देते थे कि साधू–सन्तों का आदर सत्कार करना, सेवा–शुश्रूषा करना हम सब का कर्त्तव्य है। उनमें परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब देखना चाहिए। उनमें कुछ त्रुटि भी हो, कमी भी हो, फिर भी उनका आदर करना चाहिए – यही सनातन धर्म है।" उनमें कोई दोष भी हो तो नियति स्वयं ही उन्हें दण्डित करेगी, हमें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं। उनके गुणों को ग्रहण करना चाहिए, अवगुणों से हमें क्या लेना देना ? वाह ! कितने उच्चकोटि के विचार हैं।

श्रीमान जी स्वभाव से ही अध्ययन शील थे। उन्हों ने आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा से सम्बन्धित बहुत कुछ पढ़ लिया था और समझ भी लिया था। सामान्य रूप से वे रोगों का उपचार करने में सिद्धहस्त थे। जीवन के अंतिम क्षणों तक वे स्वयं भी च्यवनप्राश

का नियमित रूप से सेवन करते रहे। आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा ही वे रोगों का स्वयं भी उपचार करते थे तथा औरों को भी ऐसा करने का परामर्श देते रहते थे। औरों को रोग मुक्ति के लिए कुछ प्रसाद भी देते थे, परन्तु साथ ही साथ उनको वैद्यों–डाक्टरों का परामर्श लेने के लिए प्रेरित भी करते थे। शारीरिक स्वास्थ्य पर वे अधिक बल देते थे। इस बारे में कवि कालीदास की उक्ति का उद्धरण भी देते थे

"शरीरं आद्यं खलु धर्म साधनम्"।

परन्तु एक बात वे स्पष्ट रूप से कह देते थे कि मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए ही भोजन करना चाहिए न कि खाने के लिए जीवित रहना चाहिए। उन्होंने स्वयं तो जिह्वा के स्वाद पर नियन्त्रण कर लिया था तथा दूसरों को भी ऐसा करने का परामर्श देते थे। उनके कथनानुसार स्वस्थ रहने का राज़ इसी बात में निहित है कि सदा भूख से कम मात्रा में भोजन लेना चाहिए। जीवन के अंतिम दशकों में वे एक ही समय सायं काल को भोजन करते थे, केवल उतनी मात्रा में, जितनी में दो तीन वर्ष का बच्चा खा सकता हैं। इन पंक्तियों के लेखक को जब वे आश्रम में बुलाना चाहते थे तो श्री द्वारिका नाथ रैणा द्वारा पत्र भिजवाते थे। बहाना यह करते थे कि जौका आटा और गाय का घी समाप्त हो चुका है। उसे लेकर अमुक दिन को शीघ्र पहुंचो। एक किलो आटा और एक पाव घी उनके लिए छः सात मास के लिए पर्याप्त होता था। एक छोटा सा चमच हलुवा खाकर कहते थे – "बस, बस, पेट भर गया। पूरी

तृप्ति हो गई।" अतः उनके भोजन खाने की मात्रा का अनुमान स्वयं ही लगा सकते हैं। वे बडे ही पितृ भक्त थे। उनकी ही इच्छाओं को शिरोधार्य करके उन्हों ने विवाहों के चक्कर में फंसना स्वीकार किया। एक बार जब वे जम्मू में नौकरी के सिलसिले में रहते थे तो उनके पिता जी अस्वस्थ हो गए और उन्होंने पत्र द्वारा श्रीमान जी को भी इस बारे में अवगत कराया। इसके उत्तर में श्रीमान जी ने भी पत्र द्वारा ही उन्हे सांत्वना दी कि वे शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करेंगे। साथ ही फारसी भाषा का एक पद भी लिख डाला, जो इस प्रकार है :

बहरसू, बहरजा, बहरपहलू
चूं अखगर आतश ज़ारम।
खुदावन्दा ! च गम दारम या न दारम्।

श्री ताया जी नौकरी प्राप्ति के लिए जिन दिनों परेशान थे, और उसकी सूचना उन्होंने श्रीमान जी को भी दे दी थी, तो उन्होंने पत्र द्वारा ही उनको आश्वस्त किया था कि समय पर सब कुछ ठीक हो जाएगा। और साथ ही साथ उनकी अध्यात्मिक जाग्रति भी करते रहते थे। पत्र में उन्होंने ताया जी को उर्दू का एक छन्द भी लिख डाला था जो इस प्रकार है :

"लिखना है हमें वह जो लिखने में न आए,
लिखने में जो आए भी, तो पढ़ने में न आए।
सरमाया ज़िन्दगी है फकत एक नदामत,
कहने में जो आए भी, सुनने में न आए॥"

उपरोक्त दोनो पत्र उन्होंने १६३०–१६३५ ई० के बीच में लिखे थे।

श्रीमान जी एक अच्छे कवि भी थे। उर्दू, हिन्दी तथा विशेष रूप से कश्मीरी भाषा में उन्होंने बहुत सारी कविताएं लिखी थी, परन्तु उनको सुरक्षित रखने में वे बाद में अत्यन्त उदासीन हो गए थे। अतः वे सब अब कहीं मिल नही रही हैं। कदाचित इसका कारण निवासस्थानों को बदलना भी हो सकता है। उनकी लिखी मात्र एक कश्मीरी लीला अब प्राप्त हो रही है, जिसे उनके एक भक्त ने फारसी लिपि में प्रकाशित करवाया था। उसका शीर्षक है –

ح ث ق

इसके बोल इस प्रकार है :

"हा ज़ीव ़च्य कम्युक छुई चिकचाव।"
कुनि छुय वेलु स्वर दीवु सुन्द नाव।।

इस लीला को इसी पुस्तक में परिशिष्ट के अंतर्गत मुद्रित किया गया है।

वास्तविकता यह है कि श्रीमान जी की साधना एवं सिद्धावस्था के विषय में कुछ विवेचन करना तो इस लेखक के सामर्थ्य से बाहर की बात है। परन्तु उन्ही की इच्छापूर्वक कृपा दृष्टि से जो कुछ भी सम्भव हो सका, वह प्रबुद्ध भक्तजनों एवं विज्ञ पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया गया है। यदि इस प्रयास द्वारा किंचित् अंश में भी उनके भक्त जनों एवं अन्य साधक महानुभावों को लाभ मिलता है तो लेखक का यह प्रयास सफल माना जाएगा।

लेखक का यह प्रयास तो वास्तव में 'स्वान्तः सुखाय' ही है। इस में गुरुप्रेरणा एवं भक्तजनों की आग्रहपूर्वक आज्ञापालन का अंश भी जुडा हुआ है। फिर भी इस में वर्णित घटनाओं में कोई बात प्रेरणादाई एवं लाभकारी लगे तो इसे मात्र गुरुकृपा ही समझनी चाहिए। कहीं कोई त्रुटि दिखाई दे तो लेखक की अल्पबुद्धि का ही कारण समझ कर क्षमा करनी चाहिए।

!! हरि ॐ तत्सत् !!

ॐ द्यौः शान्तिरंतरिक्षं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शन्तिरौषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्मा शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः !!

अध्याय ४

कुछ विचित्र घटनांए

श्रीमान श्री पापाजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन ही विचित्र घटनाओं से भरा पड़ा है। उनका जन्म लेना भी एक विचित्र घटना है और ब्रह्मलीन होना भी। श्रीनगर के सफाकदल इलाके में खानकाहे सोक्तः एक प्रसिद्ध मुहल्ला है। वहीं पर श्रीमान जी का जन्म हुआ। उन दिनों इस इलाके की एक प्रसिद्ध मुसलमान महिला थी जो प्रसव काल के समय महिलाओं के लिए दाईं का काम करती थी। अपने काम में वह सिद्धहस्त मानी जाती थी। अतः श्रीमान जी के जन्म पर भी उनकी माता कुदमाली के लिए इसी दाईं की सेवाएं प्राप्त कराई गई थीं। कहते हैं कि इस दाईं महिला ने जन्मते समय ही यह भविष्यवानी की थी कि एक महान विभूति का जन्म हुआ है। यह महिला धार्मिक विचारधारा की थी। उसी का एक पुत्र बाद में कश्मीर राज्य का द्वितीय प्रधान मन्त्री बन गया, जिसे बखशी साहब कहतें है।

जुलाई १९९० ई० को श्रीमान जी का यह पांचभौतिक शरीर त्यागना भी एक अत्यन्त विचित्र घटना है। कश्मीरी पण्डितों के विस्थापन के समय श्रीमान जी अपने ही मकान में रहे। वे वैचारिक दृष्टि से विस्थापन के पक्ष में नही थे और कहा करते थे कि इससे समस्या का कोई हल नहीं निकलेगा। हिन्दू—मुसलमान सब उनको

एक सिद्ध महापुरुष के रूप में जानते भी थे और मानते भी थे। उनके आश्रम में सब जातियों के लोग बडी श्रद्धा के साथ आया करते थे। श्रीनगर का छानपोरा का इलाका इस्लामी आतंकवादियों का गढ़ बन गया था और आज तक भी वैसा ही चला आ रहा है। एक दिन शस्त्रधारी कुछ आतंकवादी दिन को ही इन के घर में प्रविष्ट हुए। आतंकियों ने उन्हे आदर के साथ सलाम की और उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने की प्रार्थना की। श्रीमान जी ने उनको घूरते हुए शान्तभाव से पूछा – "तुम लोग कौन हो और किस काम के लिए आशीर्वाद चाहते हो।" इस पर उन्होंने अपना परिचय दिया और कहा कि हम लोग कश्मीर को भारत से अलग करके एक स्वतंन्त्र देश बनाना चाहते हैं। श्रीमान जी ने उन्हे पुनः घूर कर देखा और ऐसी मुख–मुद्रा बनाई मानों उनके मूर्खतापूर्वक दुष्कार्य पर अफसोस प्रकट कर रहे हों। उन्हें कुछ उत्तर दिए बगैर ही वे मानों पुनः गम्भीर मुद्रा में चले गए और इतने में ही बाहर से कुछ शोर हुआ और आतंकवादी तत्काल ही अपनी प्रार्थना अधूरी छोडकर घबराहट में वहां से भाग निकले। यह जुलाई १९९० ई० का श्रावण शुक्ल पक्ष का समय था।

दूसरे दिन सुरक्षा कर्मियों को पता चला कि आतंकवादी इस सिद्ध पुरुष के घर में भी प्रविष्ट हुए थे। अतः वे भी श्रद्धापूर्वक और बडे विनम्र भाव से इनके पास आए और प्रणाम करने के बाद उन्हें यह स्थान छोडने की प्रार्थना की। क्योंकि दरिन्दे आतंकवादियों से किसी भी प्रकार की दुर्घटना होने की सम्भावना हो सकती है।

श्रीमान जी ने मुस्कराकर उन्हें टाल दिया। दूसरे दिन वे फिर आए और अपना पूर्वमन्तव्य दोहराया और विनम्रभाव से प्रार्थना करने लगे : "श्रीमान जी ! आतंकवादी पागल दरिन्दे हैं, उन्हें ऊंच नीच का कोई भी ज्ञान नहीं है। अतः हम चाहते हैं कि आप किसी सुरक्षित स्थान पर चले जाएं। आप जहां भी जाना चाहेंगे, हम अपने वाहन से वहां पहुंचा देंगे।" श्रीमान जी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया – "क्या वास्तव में आप मुझे वहां पहुंचा सकते हैं जहां जाने की मेरी इच्छा है?" वे इन शब्दों के वास्तविक अर्थ को न समझते हुए सकारात्मक शब्दों में उत्तर देने लगे। श्रीमान जी ने पुनः पूछा – "क्या अब आप की यही इच्छा है और सरकार का पूरा आदेश भी है कि हमें अब यह स्थान छोडना चाहिए?"। उन लोगों ने पुनः हामी भरी। श्रीमान जी ने अपनी पत्नी और ताया जी से भी पूछा कि अब आप की क्या राय है? जब उन्होंने भी हां में उत्तर दिया तो उन्होंने कुछ गम्भीर मुद्रा में ताया जी से कहा – "ज़रा जन्तरी निकालो। और शुभ मुहूर्त देखलो"। ताया जी ने आगामी आष्टमी या नवमी का दिन शुभ दिन चुन लिया, इस दिन वार, योग और नक्षत्र भी यात्रा के लिए शुभ है। इस पर श्रीमान जी ने सुरक्षा कर्मियों को नवमी के दिन प्रातः आने को कहा। श्री ताया जी और काकनी दोनों अचंभित होकर सोचने लगे कि क्या वास्तव में श्रीमान जी यहां से प्रस्थान करने के लिए राज़ी हो गए? पूछने पर श्रीमान जी ने बडी शान्त और प्रसन्न मुद्रा में कहा – "अब तो यही करना पडेगा, क्योंकि अब इसके बगैर कोई चारा नहीं। सब यही चाहते हैं, आप की भी यही इच्छा है और ऊपर से भी यही आदेश

है। अतः अब हम हठ क्यों करें ? जब सब क़ी यही इच्छा है तो हम भी इसी को स्वीकार करते हैं "।

दूसरे दिन अष्टमी शाम को सब को भोजन करने के लिए श्रीमान जी ने कहा। स्वयं भी सामान्य रूप से कुछ खाया और ताया जी से कहने लगे कि सब सामान बन्धवा लो, कल चलना है ना। गाडी वालों को देर नहीं लगनी चाहिए। यह कहकर सोने से पूर्व के नियमित ध्यान में लग गए। घर वालों ने सामान बान्ध लिया और निकलने की पूरी तैयारी करने लगे। कुछ देर बाद श्रीमान जी ने स्वयं ही अपने हाथ पैर पसार कर शवासन की मुद्रा बनाई और लेट गए। फिर ज़ोर से ॐ शब्द का उच्चारण करते करते सहजभाव से इस पंच भौतिक शरीर की चेतना को शान्त कर दिया। ताया जी और काकनी पास आकर देखने लगे और देखते ही देखते प्राण पखेरू उड चुके थे। उन्होंने स्पर्श करके देख लिया कि शरीर निर्जीव पडा हुआ हैं।

अगले दिन जब सुरक्षा कर्मी गाडी लेकर आए तो बाहर कर्फ्यू (निषेधाज्ञा) लग चुका था। भीतर प्रवेश करते ही सब परिस्थिति से अवगत हो गए और अपने दिए गए परामर्श पर पछताने लगे। परन्तु अब क्या हो सकता था ? हर ओर से गोलियों की आवाज़े आती थी। सुरक्षा कर्मी स्वयं भी अंतिम संस्कार कराने में जुट गए। और पास वाले दूधगंगा नदी तट पर बने शान्ति घाट पर उनका दाहसंस्कार करवाया गया। रातों रात फोन पर सूचना प्राप्त करने पर श्रीमान जी का पौत्र भी छानपोरा पहुंच चुका था

और अन्तिम संस्कार भी उसी के हाथों सम्पन्न हुआ। श्रीमानजी की पहले से ही यही इच्छा भी थी।

उसी दिन देर रात को एक भयंकर दुर्घटना घटी। आतंक वादियों ने पास वाले खाली मकान में घुस कर इस आगन्तुक युवक पर गोलियों की बोछार कर दी। और श्रीमान जी का पौत्र गम्भीर रूप से घायल हो गया। सवेरे तक कुछ सम्भव उपचार होता रहा। अगले दिन सुरक्षा कर्मियों की ही गाडी में श्री ताया जी, इस घायल पुत्र को लेकर दिल्ली के लिए चल पडे और वहां बहुत दिनों तक चिकित्सा के बाद यह घायल युवक पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। श्रीमान जी के पवित्र अवशेषों को भी श्रीनगर से मंगवाया गया और समय पर उसका गङ्गां प्रवाह किया गया।

श्रीमान जी प्रायः कहा करते थे – "बस Ninty, Ninty अर्थात नब्बे याद रखिए।" हम समझते थे कि वे अपनी आयु के विषय मे कहते होंगे। हमें क्या पता था कि वे सन् १९९० ई० की बात कर रहे हैं। कहते हैं कि कुछ वर्ष पूर्व वे अपने आप ही कुछ बड़बड़ाते हुए से कह रहे थे – "हां, उसदिन बडी उथल–पुथल मची होगी। कोई आने जाने वाल नही होगा। संस्कार कराना भी कठिन हो जाएगा।" परन्तु सुनने वाले उस समय इसका कुछ भी अर्थ नहीं निकाल सके।

इस लेखक को बहुत से सिद्ध पुरुषों से मिलने का सुयोग प्राप्त हुआ हैं, परन्तु अपनी मूर्खतावश या अपरिपक्वता के कारण कुछ भी ग्रहण न कर सका। सन १९८० ई० के इर्द गिर्द मुझे

पहली बार सत्थू बरबरशाह के आश्रम में श्रीमान जी के दर्शन हुए। कुछ महीनों तक जब भी मैं श्रीनगर अपने निजी काम से जाया करता था। तो आश्रम में भी श्रीमान जी के दर्शनार्थ जाने लगा था। परन्तु अपनी मोटी खोपडी में कुछ भी पल्ले नहीं पड रहा था। अतः हताश होकर मन ही मन वहां न जाने का निर्णय ले लिया।

एक दिन सरकारी काम से मुझे श्रीनगर जाना पडा। रात तो लगनी ही थी, परन्तु निश्चय कर लिया था कि आश्रम में नही जाऊंगा। अतः दोपहर एक बजे के समीप जब मैं श्रीनगर पहुंचा तो कोठी बाग के कृष्णा प्रेस के पास ही गाडी से उतर गया। विचार था कि परिचित प्रेस मालिक के पास अपना भारी बैग रखकर पास से ही वितस्ता नदी नौका द्वारा पार करके लाल मण्डी चला जाऊंगा और बोर्ड कार्यालय में सरकारी काम निपटा कर शाम को सामान उठाकर एक सम्बन्धी के घर चला जाऊंगा। मैं प्रेस के द्वार के बाहर कदम रखने ही वाला था कि सामने से श्रीमान जी को अपनी ओर आते हुए देख लिया। अचम्बित होकर हडबडाते हुए प्रणाम करके निलकने ही वाला था कि श्रीमान जी मधुर मुस्कान पूर्वक मुझे घूरते हुए कहने लगे – "हां, हां, मुझे मालूम था कि आज तुम अवश्य आओंगे। इसी कारण आज किसी को साथ नहीं लाया। चलों तुम्हे भी आश्रम ही तो जाना है ना।" ऐसा कहते हुए एक साधारण सा कपडे का थेला, जो सदा उनके पास बाएं हाथ में रहता था, मुझे थमाया। इसका वजन पाव भर से अधिक नहीं था। मैं मन मसोस कर रह गया, इन्कार भी न कर सका और मुझसे कोई उत्तर भी न निकल सका। फिर अंदर से अपना भारी

बैग भी निकाला और श्रीमान जी के पीछे पीछे चलने लगा। उन्होंने मुख्य सडक पार कर ली और दो महाविद्यालयों के बीच की तंग गली से चलने लगे, जो सीधे बरबरशाह की ओर जाती है। इस गली में पैदल चलने वालों की भीड़ होती थी और श्रीमान जी इसी गली में सर्पाकार घूम घूम कर चलने लगे। मुझे भी विवश होकर उनके पीछे पीछे चलना पडा। वे बार बार मुड मुड कर मेरी ओर देखा करके मुस्करा रहे थे। गर्मी का मौसम था, मैं ने सूट पहना हुआ था। अपना बैग भारी तो था ही, परन्तु श्रीमान जी का थेला भी वज़नदार लगने लगा। श्री प्रताप महाविद्यालय के मुख्यद्वार पर पहुंच कर श्रीमान जी ने मुडकर पूछा कि सामान वज़नदार तो नहीं है? मैं ने लज्जित होकर ना में उत्तर दिया। पसीनों से मै सराबोर हो रहा था, अतः मैं ने कोट के सब बटन खोल दिए। श्रीमान जी का थेला अब इतना भारी लगने लगा कि लटकाते हुए अब उसको उठाना असम्भव हो गया। अतः सब लोकलाज छोडकर मैं ने उसे मज़दूर की भांति कन्धे पर उठा लिया और दूसरे हाथ में अपना बैग लटकाता हुआ चलने लगा। मुझे लगने लगा कि चक्कर खाकर गिर पडूंगा। शारीरिक रूप से बहुत ही उत्पीडित होकर बार बार अपना बैग सडक पर रखकर सुसताने लगा। मैं हॉफता रहा और श्रीमान जी विलक्षण रूप से मुस्करा रहे थे, यह भी मैं देखर रहा था। पूछते भी रहे कि बोझा भारी तो नहीं हैं ? ये शब्द उस समय जले पर नमक का काम कर रहे थे और मैं असहाय होकर मन मसोस कर खामोश बना रहा। जैसे तैसे बरबरशाह के चौराहे पर पहुंच गए। वहां श्रीमान जी ठहर गए और

नानवाई से आश्रम के लिए कुछ कुल्चे खरीदने लगे। मैने भी दोनो बैगों को एक तरफ रखकर विश्राम लिया। जब तक श्रीमान जी व्यस्त रहे, तब तक मैं ने उनके थेले में हाथ डाल कर देखना चाहा कि इस में कौन सी चीज भारी हैं। परन्तु, वहां कुछ भी नही था। केले के कुछ छिलके, खाली माचिस और सिग्रेट की डिबियां, फटे कागज़ के तिनके और इसी प्रकार की कुछ निरर्थक चीजे थी। आधिक से अधिक इस सब का वज़न आधा किलो से अधिक नही हो सकता था। मैं दंग रह गया और सोचता रहा कि दस पंद्रह किलो का वज़न किस चीज़ का लग रहा था ? श्रीमान जी ने कुल्चे भी इसी थेले में डाल दिए। और मुस्कराकर आगे चलने का इशारा किया। मैं ने दोनो बैग उठाए, परन्तु हालात अब बदल चुके थे। श्रीमान जी का थेला तो बहुत ही हल्का हो गया था, अपना बैग भी अब कुछ भी वज़नदार नहीं लग रहा था। मैं बडे आराम के साथ चलने लगा और अन्तर मन में ही लज्जित सा हुआ अनुभव करने लगा। श्रीमान जी फिर विलक्षण दृष्टि से मुझे घूरने लगे और मुस्कराने लगे जैसे पूछ रहे हैं – बच्चू ! क्या विचार है अब तेरा! मैं ने मन ही मन पछताकर प्रण किया कि अब ऐसी गलती कभी नहीं करूंगा। आश्रम में पहुंच कर मैं ने पुनः श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके आत्मसमर्पण कर दिया और दोनों की निर्वाक् वाणी ने वह सब कुछ कह और सुन डाला जो कदाचित शब्दों के द्वारा सम्भव नही हो सकता हैं।

यहां उनके विचित्र थेले की बात आई है। जिस समय जिस

वस्तु की इन्हे आवश्यकता होती थी, उसी कचडे के थेले में हाथ डालकर निकाल देते थे। ऐसा हम ने कई बार देखा है। एक बार एक व्यक्ति कमरे की सफाई कर रहा था। अनायास ही उसने इस थेले में हाथ डाल कर केवल कचडा ही पाया। वह उसे बाहर फैंकने ही वाला था कि श्रीमान जी ने मना कर दिया और कहा कि इस को यूं ही फैंको नहीं, यह तो विभूति है। परन्तु वह व्यक्ति उसका कुछ भी अर्थ न समझ सका, केवल देखता ही रहा। एकादशी के एक दिन व्रतधारी होने के कारण इसी थेले से ही, बिना मौसम के ही, मेरे लिए एक केला निकाला। मुझे अपने सामने ही खिला कर छिलका पुनः उसी थेले में डाल दिया। समय आने पर उस कचडे को हब्बाकदल के मध्य भाग से वितस्ता प्रवाह करने के लिए द्वारिका नाथ जी को आज्ञा देते थे।

सन् १६८० ई० में, जबकि मैं आश्रम के लिए नवागन्तुक ही था, एक दिन श्रीमान जी ने इन्दिरा गांधी का एक बडा चित्र लाया और एक भक्त से आश्रम की दीवार पर उस स्थान पर लगाने के लिए कहा, जहां पर उनकी दृष्टि सीधे चित्र पर पडे। देवी देवताओं के मध्य में इंन्दिरा जी का चित्र लटकाया जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। ऐसा मुझे इस कारण से भी खटका क्योंकि मेरी राय में नहरू परिवार की कुनीतियों ने ही भारत को तबाही के दहाने पर पहुंचा दिया था। मैंने साहस करके श्रीमान जी से प्रार्थना की कि देवी देवताओं के साथ एक साधारण संसारी व्यक्ति का चित्र लटकाना बुद्धिमानी का काम नही। श्रीमान जी बोले कि तुम्हारी बात तो ठीक है परन्तु अब इसके बगैर कोई चारा ही नही

रहा। मैं ने एक एक करके फिर इन्दिरा जी के गलत कामों का वर्णन किया जो हिन्दू धर्म और समाज के प्रतिकूल थे। श्रीमान जी ने उन सब बातों को स्वीकार किया, किन्तु पुनः यही बात दोहराई कि अब तो निर्णय हो चुका है, इस के बगैर अब चारा ही नही रहा। मैं खिन्न मन से कातर दृष्टि से उनकी ओर ताकने लगा। कुछ देर ठहर कर वे मुझे आश्वस्त करते हुए से फिर कहने लगे कि वह अधिक काल तक टिक नहीं सकेगी। मै बाहर निकला और सहयोगियों से कहने लगा कि आगामी निर्वाचन में इन्दिरा गांधी फिर से सत्ता में आएगी। राजनैतिक दृष्टि से उस समय ऐसा होना असम्भव सा दिखाई देता था और राजनैतिक पण्डितों की भी यही मान्यता थी, परन्तु न चाहते हुए भी मुझे पूरा विश्वास हो गया कि ऐसा ही निकट भविष्य में होने वाला है। बाद में हुआ भी वही।

उनके एक भक्त ने मुझे एक रोचक घटना सुनाई जो श्रीमान जी के जीवन से सम्बन्धित है। बात उन दिनों की है जब श्रीमान जी श्रीनगर में महालेखाकार के कार्यालय में काम करते थे। उन दिनों उनका नियम था प्रतिदिन प्रातः शंकराचार्य की पहाडी पर चढ़कर पानी का घड़ा कन्धे पर उठाकर शिव लिंग पर पूजा के समय डालना। इस काम में उन्हें बहुत समय लग जाता था। फिर घर जाकर भोजन करना और फिर कार्यालय पहुंच जाना। अतः वे करीब बारह बजे कार्यालय पहुंच जाते थे। एक दिन महालेखाकार ने कार्यालय का निरीक्षण करते समय श्रीमान जी को अनुपस्थित पाया। इनके मेज पर फाइलों का अम्बार पडा हुआ था जिस पर

कई दिनों की गर्द पडी हुई थी। कुछ सहयोगी कर्मचारियों ने भी चापलूसी करके बडा चढ़ाकर शिकायत की। फाइलों को जांचने पर पाया कि कुछ दिनों से उन को खोला ही नहीं गया है। अधिकारी महोदय ने सब कुछ देखा, सुना और क्रोधाभिभूत होकर केवल इतना ही कहा कि जब जानकी नाथ आएगा तो उसे सीधे मेरे कमरे में भेज देना। उसके कुछ देर बाद जब श्रीमान जी कार्यालय पहुंचे तो कुछ सहकर्मी कुटिल हंसी हंसते हुए उनके पास आए और सब घटना सुनाई। कुछ लोगों ने व्यंग्य से यहां तक कहा कि अब देखेंगे कि तुम्हारा भगवान तुम्हें कैसे बचा पाएगा। श्रीमान जी ने सहकर्मियों से बहुत अनुनय विनय की कि इस समय अब तुम्हीं मेरा पक्ष ले लो। परन्तु कोई राज़ी नही हुआ। फलतः विवश होकर उन्हें अकेले ही अधिकारी के कक्ष में जाना पडा। अधिकारी ने क्रोधित होकर बहुत फटकारा और देर से आने का कारण पूछा। परन्तु श्रीमान जी निर्वाक होकर थरथराते हुए से देखने लगे। अधिकारी ने जब उन्हें उत्तर देने के लिए विवश किया तो श्रीमान जी बोले "साहब ! आप हमारे माई बाप हैं। कुछ निजी विवशताओं के कारण आज कल मुझे कार्यालय पहुंचने में देर अवश्य हो जाती है। परन्तु ओवरटाइम देकर दिन का सारा काम निपटा लेता हूं। मेरे मेज़ पर कोई फाइल अधूरी नहीं पडी है। यह सुन कर अधिकारी जल भुन गया क्योंकि उन्होंने स्वयं निरीक्षण करके वहां देखा था कि कई दिनों का काम बकाया है। वे उत्तेजित होकर बोलने लगे कि मैं ने अभी अभी देखा है कि कागजों को तुमने कई दिनों से छुआ भी नही है। नम्रता दिखाकर

सामने ही इतना बडा झूठ बोलते हो ? यह कह कर उनका हाथ पकड कर वहां घसीटते हुए से ले गया और कहा ज़रा खुद ही देख लो वास्तविकता क्या है ? परन्तु आश्र्चर्य ! सब फाइलें साफ सुथरी तौर पर रखी हुई है, दैनिक काम दिनांक पूर्वक दर्ज किया गया है। अधिकारी महोदय बुद्धिमान व्यक्ति थे कि बात क्या हो सकती है। बहुत कुछ ताड गए परन्तु किसी को कुछ आभास न देते हुए प्रत्यक्ष में डांटते हुए से उनसे कहने लगे "यह कामचोरी यहां नही चलेगी। ये फाइलें उठाकर मेरे कमरे में चले आओ। श्रीमानजी सहकर्मियों से सहायता देने के लिए गिडगिडाया, तो सब ने इन्कार किया और व्यंग्यपूर्वक मुस्कराते रहे। अतः श्रीमान जी अकेले ही भयभीत जैसे होकर साहब के कमरे में चले गए। अध्किारी ने चपरासी से कमरा बन्द करने के लिए कहा और आदेश दिया कि किसी को अभी भीतर आने मत देना। कर्मचारी लोग समझने लगे कि अवश्य ही जानकी नाथ को निलम्बित किया जाएगा वे उनकी रोनी सूरत देखने की प्रतीक्षा में बैठ गए। उस कक्ष में अधिकारी ने श्रीमान जी से मुस्कराते हुए केवल इतना पूछा कि देर से आने का असली कारण क्या है ? श्रीमानी जी ने भी अपने दैनिक नियम का ही कारण बताया। यह सुनकर अधिकारी ने खडे होकर श्रीमान जी को कुर्सी पर बिठाया। और स्वयं उनके सामने नीचे बैठकर क्षमा याचना की। श्रीमान जी पहले बहुत संकुचित से होकर खडे हुए परन्तु साहब भी कहां मानने वाले थे। देर तक आपस में बातें होती रहीं। साहब ने विनती की कि कार्यालय में मैं आप का अधिकारी अवश्य रहूंगा, परन्तु इसके

बाहर आप मेरे अधिकारी बन जाएं। अंत में यही निर्णय हुआ और श्रीमान जी उसके अध्यात्मिक मार्ग दर्शक बन गए। इन दोनो की आपस में क्या क्या बातें होती रही, कौन जान सकता है ? फिर दरवाज़ा खुला और श्रीमान जी प्रसन्न मुद्रा में अपने कक्ष में चले गए। सहकर्मियों के बार बार पूछने पर उन्होंने गम्भीरता पूर्वक केवल इतना ही कहा कि अधिकारी महोदय बहुत ही शरीफ आदमी हैं। मेरी विनती स्वीकार करते हुए मुझे माफ कर दिया और भविष्य में सतर्क रहने के लिए परामर्श दे दिया। सहकर्मी हतप्रभ एवं अचंभित हुए, क्योंकि वे उनकी रोनी सूरत देखने को उतावले थे। परन्तु वास्तविकता का पता कोई नहीं जान सका।

हमारी एक पुत्री डाली जी जिन दिनों कश्मीर विश्वविद्यालय में पढ़ती थी, उन दिनों वह अपने भाईयों के साथ एक स्थान पर किराए के कमरे में निवास करती थी, जो आश्रम के समीप ही था। अतः वह भी बडी श्रद्धा और भक्ति के साथ आश्रम में नियमित रूप से जाती थी। श्रीमान जी ने भी सहजता के साथ इस लडकी के साथ वात्सल्य भाव निर्माण किया था और इस का नाम शकुन्तुला रखा था। प्रत्येक बार भेंट होने पर इसे प्रसाद रूप में बादाम दिया करते थे। उन्ही की अनुकम्पा से इसकी इच्छाएं पूरी होती गई और वह भी बाद में महालेखाकार कें कार्यालय में ही नियुक्त हो गई। विवाह के उपरान्त वह अपने पति देव के साथ श्रीनगर में ही रहती थी। और प्रत्येक रविवार को नियमित रूप से आश्रम में जाया करती थी और श्रद्धा के साथ सेवाकार्य में हाथ बटाती थी। डेरे पर

उसके घर के लोग भी आया जाया करते थे। और जिस दिन वह आश्रम आती थी उस दिन जितने लोग घर पर होते थे या आने वाले होते थे, उतने ही बादाम उसे जाते समय थमाते थे। उसने अपने सम्बन्ध में एक रोचक घटना सुनाई।

एक दिन वह प्रातः ७ बजे अपने पति को जगाने लगी कि उठकर नानवाई से रोटियां लाएं ताकि दोनो का नाशता हो जाए और अपने अपने कार्यालयों में जाने के लिए देर न हो जाए। सर्दी का मौसम था, जगाते समय झुंझुलाहट में उसके पति मखोल के रूप में उसे कहने लगे कि क्या ही अच्छा होता कि पापा जी महाराज प्रसाद के रूप में बादाम के बदले रोटियाँ ही देता ताकि मुझे सवेरे ही जागना न पडता। फिर हाथ मुहं धोकर ज्यों ही वह बाजार जाने के लिए तैयार हो गया त्यों ही दरवाजा खुला और श्री द्वारिका नाथ जी रैणा अन्दर आए। सीधे डाली से कहने लगे कि कल तुम आश्रम क्यों नही आई, पापा जी प्रतीक्षा कर रहे थे। बाद में मुझे यह लिफाफा तुम्हे देने के लिए कहा। यह प्रसाद है। लिफाफा खोलते ही उसमें से श्रीनगर में बनने वाले सब से उत्तम नानवाई की कुछ रोटियां निकली और दोनो दम्पति एक दूसरे की ओर हतप्रभ से देखने लगे। फिर उन्होंने अपने बीच हुई सारी वार्ता द्वारिका नाथ जी को सुनाई। और उस घटना के बाद डाली का पति भी समय मिलने पर आश्रम जाने लगा।

एक दिन की बात है कि श्रीमान जी आश्रम में अपने भक्तजनों के साथ प्रसन्न मुद्रा में बातचीत में मस्त थे कि एकाएक

इस लेखक को अपने समीप बुलाया और कहा – "तुम्हारे गांव में माता कुलवागीश्वरी का मंदिर बडा सुन्दर है। क्या तुम्हे मालूम है कि वास्तव में यह स्थान एक सिद्ध पीठ है ? आजकल वहां हिन्दी–संस्कृत का पढाया जाना और सत्संग का काम क्या कुछ हो रहा है कि नहीं ?"

मैं ने उत्तर में कहा कि कुछ कुछ हो रहा है। संस्कृत पढाने के साथ साथ गीता प्रवचन भी हो रहा है। उनके पूछने पर कि यह काम कौन कर रहा है, मैं ने उस व्यक्ति का नाम बताया जो बडी लगन के साथ वहां की धर्मशाला में यह काम तत्परता से कर रहा था। फिर इधर उधर की बातों के बाद दो तीन बार यही पूछते रहे कि यह काम कौन वहां कर रहा है ? मैं ने समझा कि शायद वे कुछ ऊंचा सुनते हैं, अतः लिखकर देदिया कि अमुक व्यक्ति, जो संस्कृत का विद्वान भी है, यह काम कर रहा है। इसे पढने के बाद हंसकर कहने लगे – "हां, हां, यह तो सुन लिया कि अमुक व्यक्ति यह काम कर रहा है। परन्तु तुम्हें पूछता हूं कि कौन पढा रहा है?" मैं हतप्रभ सा होकर उनकी ओर कातर दृष्टि से ताकने लगा और वे विलक्षण सी मुस्कुराहट से टकटकी लगाकर देखते रहे शायद मेरी ना समझी का लुतुफ उठा रहे थे। इस प्रश्न का अभिप्राय फिर कोई आठ मास के बाद मेरी समझ में आगया जब यह काम स्वयं मेरे ही कंधों पर आ पडा।

श्री द्वारिका नाथ जी रैणा की जानकारी में आएं कुछ संस्मरण

उन दिनों श्रीमान जी सत्थू बरबरशाह में रहते थे। प्रतिदिन की भांति वे अपने निवासस्थान से आश्रम की ओर आ रहे थे कि दूसरी ओर आ रहे व्यक्ति से उन्होंने कहा – "आप जहां जा रहे है, मेरा सलाम भी वहां पहुंचाना।" दोनो अपने अपने रास्ते से आगे बडे। कुछ महीनों के बाद यही व्यक्ति उसी स्थान पर रोज़ चक्कर काटते हुए देखा गया। एक दिन मुहल्ले के एक आदमी ने उनके पास जाकर पूछा कि आप रोज क्या यहां चक्कर लगा रहे है क्या किसी को ढूंढ रहे हैं ? उसने जब श्रीमान जी के सम्बन्ध में कहा तो उस व्यक्ति ने कारण पूछा। तो उत्तर में उसने पुरानी घटना का वर्णन किया कि जब मैं हज यात्रा पर जा रहा था तो उसने मुझे कहा था कि मेरा भी सलाम वहां पहुंचाना। मक्का शरीफ में जब और जहां से मैं तवाफ कर रहा था तो इस आदमी को अपने से आगे आगे हर स्थान पर देखा। परन्तु यत्न करने पर भी मेरा वहां उनसे मिलना सम्भव नही हुआ। यह सुनकर मुहल्ले वाला विस्मित हुआ और उस व्यक्ति को श्रीमान जी के आश्रम का पता बताया।

श्रीमान जी आश्रम में आने वालों में कुछ लोगों को दान देने की भावना जाग्रत करने के लिए आग्रह करते थे। कुछ लोग कृपण भी होते थे जो जान बूझ कर धन घर पर ही रख देते थे। और आश्रम खाली हाथ आते थे। ऐसे ही एक व्यक्ति ने पचास रुपए का नोट घर पर निकाला और खाली जेब आश्रम आया। संयोग से उसी से श्रीमान जी ने दान देने के लिए कहा तो उस ने एकदम

अपना खाली जेब दिखाया। श्रीमान जी ने धीरे से उसे पूछा कि इस में जो पचास रुपए का नोट था, वह क्या घर पर ही छोड दिया? इस पर वह व्यक्ति लालपीला होकर लज्जित हुआ।

एक बार आश्रम में पहली बार आए हुए एक अपरिचित भक्त से आश्रम से निकलते समय श्रीमान जी ने कपडे का थेला उठाने को कहा। उस में व्यर्थ की चीजे जैसे खाली डिबियां, फलों के छिलके एवं अन्य कचरा पडा रहता था। जिसे श्रीमान जी 'विभूति' कहते थे और उस थेलें में से कोई भी इच्छित वस्तु, निकाल देते थे। सब के निकलने के बाद केवल वही व्यक्ति अकेले उनके साथ रिगल चौक तक चलते रहे चलते चलते उसकी जीवन की सब मुख्य घटनाओं का वर्णन किया। यह बात दूसरे दिन आश्रम में आकर उसने हमें सुनाई।

एक बार कुछ भक्तजनों के साथ श्रीमान जी अमीरा कदल बाजार से जा रहे थे तो एक भक्त जन को सौ रूपए की अत्यन्त आवश्यकता पडी और उसने श्रीमान जी से कहा। उन्होंने सडक पर जाते हुए एक अपरिचित व्यक्ति की ओर इशारा किया कि उसी से मांगे। वह जब संकोच पूर्वक उस व्यक्ति से मांगने चला तो उस ने भी सहर्ष उसे सौ रूपए का नोट थमाया।

एक बार आश्रम से निकल कर एक व्यक्ति ने श्रीमान जी को उनका जूता अपने हाथों से पहनाने की चेष्टा की परन्तु श्रीमान जी ने मना किया कि अभी समय नही आया है। कुछ वर्षों के बाद जब आश्रम से निकल कर श्रीमान जी जूता देखने लगे तो उसी व्यक्ति

ने पावों की ठोकर से उन का जूता सामने की ओर लाया। श्रीमान जी ने हंसते हुए उसे वर्षों पूर्व घटना की याद दिलाई और कहा कि इसीलिए उस दिन कहा था कि अभी समय नही आया है। वह व्यक्ति लज्जित हो गया।

ऋषिकेश में एक सज्जन महात्मा रहते थे। उनका श्रीमान जी के साथ केवल पत्र व्यवहार का सम्बन्ध था। वे महात्मा एक साल अमर नाथ यात्रा के लिए आए। वे पता मालूम करते करते श्रीमान जी के निवासस्थान पर पहुंचे। दोनों का देर तक वार्तालाप होता रहा। समाप्ति पर जब वह महात्मा पुनः ऋषिकेश जाने के लिए तैयार हुए तो किसी ने उन्हे याद दिलाया कि आप अमरनाथ यात्रा पर जाने के लिए आए थे, क्या अब नही जाएंगे ? तो उस महात्मा ने कहा कि अब जब यहीं दर्शन हो गए तो वहां जाने में क्या लाभ?

एक बार की बात है कि श्रीमान जी प्रसन्न चित्त से आश्रम में भक्तजनों के साथ बातें कर रहे थे कि एक भक्त ने श्रीमान जी से पूछा कि क्या आपने कभी अमरनाथ की यात्रा की है ? उतर में उन्होंने कहा "हां, हां ! बडी तैयारी के साथ एक बार यात्रा पर निकल पडे। खाने पीने और छोलदारी का भी प्रबन्ध कर लिए। बडे चाव के साथ पहलगाम से चन्दनवारी पहुंच रातभर वहीं रहे। फिर दूसरे दिन वहां से वापिस लौटा।" जब इस अधूरी यात्रा का कारण पूछा गया तो उन्होंने बडे सहज भाव से कहा कि जिस काम के लिए आगे जाना था, जब वह काम वहीं पर पूरा हुआ तो आगे जाने की क्या आवश्यकता थी ?

श्रीमान जी के श्रद्धालुओं में शक्ति–स्वीट्स का मालिक भी था। श्रीमान जी कभी कभी उसके दुकान पर जाया करते थे। एक दिन कुछ भंक्तजनों के साथ वहां से ही चल रहे थे कि एक सुसज्जित ख्वाजा साहब श्रीमान जी की ओर आते ही इन के चरणों पर गिर पडा। श्रीमान जी हां, हां, कहकर आगे बडे। इस पर एक व्यक्ति ने ख्वाजा साहब से पूछा कि वह श्रीमान जी को कब से जानता है। उसने उत्तर दिया मैं इनको जानता नहीं। मैं कारोबारी आदमी हूं। एक बार मैं ने सुना कि बहुमूल्य माल मेरे लिए जिस गाडी से आ रहा था वह तबाह हो गई और सारा सामान भी नष्ट हो गया, इसका प्रभाव मुझ पर गहरा पडा और रातभर में अन्यमनस्थावस्था में ही पडा रहा कि अचानक यही व्यक्ति स्वपन में आकर मुझे सांत्वना देने लगा कि फिकिर मत करो तुम्हारा माल तुम्हें मिल जाएगा। तबसे मैं इसे ढूंढता रहा और आज अचानक उनके दर्शन हो गए।

यूं तो श्रीमान जी फोटोचित्र लेने में रुचि रखते थे। परन्तु जब उन का मन न होता तो लाख यत्न करने पर भी यह काम असम्भव हो जाता था। एक बार एक व्यक्ति ने भक्त जनों सहित श्रीमान जी के कई चित्र उनकी मर्ज़ी के बगैर ही खिंचे। परन्तु रील की धुलाई के बाद देखा गया कि सभी लोग फोटो में आएं है, परन्तु श्रीमान जी का चित्र कहीं पर भी नहीं था।

अपनी पुत्री डाली जी ने भी एक घटना मुझे बताई। अप्रैल १६८६ की बात है। आतंकवाद तेजी से फैल रहा था। हिन्दू लोग

संत्रस्त थे। हम सब ने कर्णनगर में एक मंदिर के परिसर में श्रीमानजी का जन्मदिन मनाने का कार्यक्रम बनाया था। क्योंकि सत्थू का आश्रम जलाया जा चुका था। पूरी रात यज्ञ चलता रहा। बाहरी खिडकियां दरवाज़े सब बन्द किए थे। शंख बजाना और ध्वनिवर्धक प्रयोग करने का प्रश्न ही नही उठता था। श्रीमान जी प्रातः ही नटीपोरा से पहुंचे थे और यज्ञ समाप्त होने पर एवं प्रसाद ग्रहण करने के उपरान्त वे घर जाने के लिए एक आटो में बैठ गए, सब से एक एक करके विदाई ली और हम सब सामान समेटने में लग गए। किसी काम से मैं बाहर आया तो श्रीमान जी को आटो में ही प्रतीक्षारत देखा। पास जाकर मैं ने जानना चाहा कि वे चले क्यों नही गए तो उन्हों ने डाली को, जिसे वे शकुन्तला कहते थे, बुलाने के लिए कहा। मैने उसको भेजा और स्वयं काम में लग गया। जब वह वापिस आई तो मैं ने पूछा कि श्रीमान जी क्यों बुला रहे थे। वह खिलखिलाकर हंस पडी। और कहा कि श्रीमान जी ने पुनः मुझ से विदाई ली और कहा कि मैं यहां परायों में अकेला पडा था, कोई अपना दिखाई नही दे रहा था। मैं ने सोचा कि अपनों को देखकर ही चला जाऊं।" मैं भी मुस्कराया और गम्भीरता से मनन करने लगा कि इस कथन का क्या अभिप्राय हो सकता है ?

श्री ताया जी के कुछ संस्मरण

श्रीमान श्री पापा जी महाराज परंहंस श्री रामकृष्ण के बहुत प्रशंसक थे। अपने जीवन की तृतीय दशाब्दी में उन्हें अपने छोटे

भाई के साथ कलकत्ता जाना पडा, जहां उनके भाई को एम०काम० की परीक्षा में बैठना था। वहां अपना काम समाप्त करने पर उन्होंने दक्षिनेश्वर जाने का कार्यक्रम बनाया। वही परंहंस का निवास–स्थान था। जो अब एक तीर्थस्थल बन चुका है। वे दोनों वहां दिन को देर से पहुंचे जबकि आश्रम का द्वार बंद हो चुका था। दरवाजे पर ताला लगा हुआ था। उनके छोटे भाई बहुत ही हताश हुए, सम्भवतः वे स्वयं भी इसी हाल में थे। तब उनके भाई ने विनम्र भाव से व्यग्रता प्रकट की क्योंकि शाम तक वे वहां नहीं ठहर सकते थे। अतः कुछ विचार करने पर श्रीमान जी स्वयं ही भीतर की ओर दृष्टि करके कश्मीरी भाषा में मासूम अंदाज़ में एक अबोध बच्चे की भांति विनती करने लगे, जिसका हिन्दी रूपान्तर इस प्रकार किया जा सकता है : "महाराज ! अब कुछ करो ना ! कुछ नर्म पड जाओ। हमें भी दर्शन दो ना ! हम दूर कश्मीर से आए है, मेरा छोटा भाई बहुत ही व्यग्र हो रहा है"।

इतने में क्या हुआ ? एक आवाज़ आई और ताला स्वयं ही खुल गया। उन्होंने दरवाज़ा खोला और दोनो ने भीतर प्रवेश करके दर्शन लाभ प्राप्त कर लिया। सन्तुष्ट होकर जब वे बाहर आए और दरवाज़ा बन्द कर दिया। ताला पुनः स्वयं ही बन्द हो गया। इस घटना का वर्णन स्वयं उनके भाई ने लौटकर ताया जी से किया था।

श्रीमान जी ने देशी–विदेशी प्रसिद्ध लेखकों की बहुत सी पुस्तकें पढ़ी थीं। उनमें गांधी जी की लिखी आत्म कथा भी थी। उस पुस्तक में से श्रीमान जी को गांधी जी की दो बातें बहुत

अच्छी लगी थीं, जिन का वर्णन वे प्रायः ताया जी से करते थे। वे थे 'सत्य' और 'सावधानी'। जब वे जम्मू में रहते थे, तो उन्होंने एक छोटी सी पुस्तक लाई और ताया जी को अपने भाई की नई नवेली दुल्हन को भेंट के रूप में 'बुकपोस्ट' द्वारा भेजने के लिए कहा। ताया जी ने कहा कि तब तक वे 'बुक पोस्ट' के विषय में कुछ भी जानते नहीं थे। उन्होंने पुस्तक को अपने भीतरी जेब में डाल दिया और असावधान हो गए।

बहुत दिनों के बाद ताया जी को श्रीमान जी से खूब बातें करने का अवसर मिल गया और उन्होंने पुनः गांधी जी के 'सत्य' और 'सावधानी' के विषय में पुनः लम्बी चर्चा की और अंग्रेज़ी भाषा में बार बार कहने लगे – A truthful man is always a careful man.। तायाजी तंग आ गए और कहने लगे कि हां ये बातें ठीक हैं। और मैं ने सुनी भी हैं, फिर बार बार दोहराने से क्या लाभ? श्रीमान जी ने उत्तर दिया कि वर्णित गुणों को जब तक क्रियान्वित नहीं किया जाए तब तक तो दोहराना ही पडता है। अब यही देखो न ! यदि सावधान होने की बात तुम ने आत्मसात कर ली होती, तो इतने दिनों तक पुस्तक के भार को जेब में डाल करके वहन नही करना पडता। ताया जी स्वयं भी इस काम को भूल चुके थे। अतः वे अचम्बित हुए कि श्रीमान जी को इस बात का पता कैसे चल गया?

प्रसिद्ध ज्योतिषी श्री केशव भट्ट जो श्रीमान जी से आयु में बीस–पचीस वर्ष अधिक भी थे, उनके साथ मित्र भाव में घनिष्ठता रखते थे। अध्यात्मिक क्षितिज के वे दोनो देदीप्यमान नक्षत्र थे।

श्रीमान जी ने कुछ कठिन पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या ज्योतिषी जी से ही सुनी थी। बाद में जम्मू में जब श्रीमान जी को घोर साधना के उपरान्त सिद्धि प्राप्त हुई, तो ताया जी ने जिन जिन लोगों को यह शुभ सूचना दी थी उनमें ज्योतिषी जी भी थे।

श्रीमान जी बाद में जब पुनः श्रीनगर लौट आए तो केशव भट्ट जी भी उनसे मिलने के लिए आए और दण्डवत प्रणाम में पड गए। श्रीमान जी ने उन्हें गले से लगा लिया। इन दोनों में हुई एक रोचक घटना का वर्णन ताया जी ने की है, जो इस प्रकार हैं :

एक बार एक महिला भक्त ने श्रीमान जी को और चीजों के साथ ही एक सब्ज़ी भी लाकर भेंट की। श्रीमान जी को उस सब्ज़ी की रुचि नहीं थी। वे उसे लौटाने ही वाले थे कि भट्ट जी ने समझाया कि भक्तिभाव से भेंट की हुई वस्तु स्वीकार करनी चाहिए। श्रीमान जी ने हंसकर उसे स्वीकारा और कहा कि अवश्य ही व्यक्तिगत रुचि–अरुचि का ध्यान नहीं रखना चाहिए, अपितु भक्ति भाव को ही देखना चाहिए।

कुछ महीनों बाद एक महानुभाव ने दोनों भट्ट जी को और श्रीमान जी को भोजन पर निमन्त्रण दे दिया। वहां पहुंच कर उन्हें एक स्वच्छ कमरे में अलग बैठाया गया। उस कमरे के एक कोने में चूल्हा जलाने में काम आने वाले गोबर के कुछ उपले भी थे। जब भोजन की थालियां सामने रखी गई तो आचमन लेने के बाद दोनों भोजन करने लगे। ज्योतिषी जी की थाली में से गोबर का एक टुकडा पता नही कहां से आकर पड गया था। उन्होंने हाथ से उठाकर उसे बाहर रखा तो श्रीमान जी ने मना करके बताया

"ना, ना, भक्तिभाव से भेंट की हुई वस्तु, स्वीकार करनी चाहिए, इस में व्यक्तिगत रुचि या अरुचि की बात नही देखनी चाहिए।" भट्ट जी को वह पुरानी घटना याद आई और दोनों ज़ोर ज़ोर से हंसने लगे।

एक अलौकिक व्यक्ति

श्री ताया जी ने एक और स्थान पर लिखा है कि जब एक बार श्रीमान जी गम्भीर रूप से बीमार पडे तो बुखार में बडबडाते हुए से कह रहे थे कि जब यह चला जाएगा तो इसके विषय में कोई कुछ भी न कह सकेगा। केवल इतना ही कह सकेंगे कि "वे एक अलौकिक व्यक्ति थे"। (He was a unique man) वास्ताविकता भी यही है कि कब वे दफतर का काम करते थे, कब गृहस्थी कर्त्तव्य भी अच्छी प्रकार से निभाते थे, कब साधनारत होते थे, कब सिद्धि प्राप्त करसके। साधारणतया कोई कुछ भी नहीं कह सकता है। दफतर और घर का काम अच्छी प्रकार से निपटाते हुए उन्होंने कब सब भाषाओं कें महत्वपूर्ण ग्रन्थ पढे और कण्ठस्थ किए, इस सब पर विचारमात्र करना भी एक अचम्बा लगता है। उनके विषय में साधारणतया केवल इतना ही कहा जा सकता है कि वे वास्तव में एक अलौकिक व्यक्ति ही थे। उन्होंने अपने सम्बन्ध में एक बार कहा था – "मैं ऐसी अवस्था में रह रहा हूं जहां कोई गिला–शिकवा नही।" वे आम तौर पर अपनी एक लीला के बोल दोहराते हुए देखे जाते थे –

"सन्यासु ॖ व्रॆच़ ग्रहस्थ फन्द छुम वलनऽआमुत अंदवन्द।
अन्द रोज़नुक निष्कामु : फंद मुच़रावनुक म्य सोपान दिम।।

परिशिष्ट - १

श्रीमान जी द्वारा लिखित एकमात्र उपलब्ध कश्मीरी "लीला" जो सन् १९३७ ई० में लिखी गई थी, भक्तजनों के जिज्ञासार्थ यहां पुनः प्रकाशित की जा रही है, ताकि कम से कम यह भी लुप्त न हो जाए। कविता का शीर्षक है –

फरियादि इश्क

हा ! ज़ीव़् च़्य कम्युक छुय चिक़् चाव,
वुनि छुय वेल़् स्वर दीव़् सुन्द नाव।
प्वोत फेर ब्रोंठ नेर चूर खोऽत त्राव,
वुनि छुय वेल़्, स्वर दीव़् सुन्द नाव।।

दोह छुय कथ़् कॅर्य–कॅर्य सोरान,
रात छय नेरान शाह त्रावान।

सुबहन छुख व्यवहार अंज़रान,
शाम छुय म्वकलान ट़्क्य गञ्जरान।।

अकि तरफ़् पाँऽस़् छुय वाँऽस छलरान,
ब्यय तरफ़् न ह्यकुन प्वलरावान।

योरह छुय युथ संकल्प़् तूफान,
ओरह छुख हजि वति नम आलवान।।

तवय छय गॉम़्च़् यीर्व़्न्य नाव।
वुनि छुय वेल़् स्वर दीव़् सुन्द नाव।।१।।

बुजरुक दोह यलि अथ्हाविय,
माजि हुन्द द्वद ताञ याद पाविय

अरिरुक हम त् थम ढ़यलिराविय,
शोल् वुन बोल बाश कऽल् राविय।।

वुछि व्न्य ॲछ यलि ॲनिराविय,
लोचःर्चि खोड् फ्यचि नञिराविय।

चम् खम चम ताञ तनिराविय,
स्|ह ऑसिथ शाल बनिराविय।।

मशरिय व्यषयन हुन्द चले जाव।
वुनि छुय वेल् स्वर दीव् सुन्द नाव।।२।।

लंग् व्नि ज़ंग् येलि वारह ड्वकनय,
लोरि ज़ोर् ओर् योर किथ् पकनय।

फुटवऽञ कोठ्य येलि वारह श्रोकनय,
अन्दरी अन्दरी चे़र् चो़कनय।।

पननी शुर्य त् बॉच़ थर फेरनय,
अंग आऽशनाव कति बुथि नेरनय।

अकि तरफ् आपदायि जाय गेरनय,
ब्ययि तरफ् व्यपदायि ओल येरनय।।

ब्रोंठ् कनि च़्यन्तायि हुन्द आमताव।
वुनि छुय वेल् स्वर दीव् सुन्द नाव।।३।।

ज़ेरि ज़ेरि हेरि ॲछ वारह टेरनय,
ज़्वंग्रेमच् ज़ंग् टंगह नेरनय।

ह्यस त़ होश नवि नवि वत़ शेरनय,
तॅथ्य अन्दर कुनि दोह़ प्राण नेरनय।।

जल्दी मंज़ तनि छोक़ नावनय,
दक़ दक़ दिथ ब्रोंठ पक़नावनय।

हक़ नाहक़ स़त्य स़त्य बाक़ त्रावनय,
यव़ तव़ बोर घाट वातनावनय।।

जानाऩ पानस शमशान छाव।
वुनि छुय वेल़ स्वर दीव़ सुन्द नाव।।४।।

बुल चुकि मत़ वुछत़ यावनस कुन,
पत़ छुय तावनस बुथि पान द्युन।

कॅम्य स़ंज़ि वेरि छुय च़्य राग दारुन,
कमि लूभ़ भाव़ छुय च़्य पान मारुन।।

लूक़ ह़ज्ज़ि चेटि क्याह छुय च़्य लारुन,
कुन पान मटि छुय त़ थोद खारुन।

छ़टि ह़ज्ज़ि नटि मज्ज़ म़ फॅटरावुन,
वोटि–वोटि निथ स्यन्धि बठित्रावुन।।

सुलि गरि तुलमुल नम स्यज़राव।
वुनि छुय वेल़ स्वर दीव़ सुन्दनाव।।५।।

ग्वड़ वॅथ्य त्राव श्रवऩक्य दारिबर,
पिलियय कांऽसि निशि व्यद्या पर।

टॅग़ यिऩ रोस अति जंग़–जंग़ कर,
सत्संग़ लंग़ लज्जि अंग़ न्यास दर।।

अमि चंग़् ज़ंग़् म्वकलिथ योर तर,
गाटल्यन निशि कथ़् सऱ् खऱ् कर।

पज़ऱ्चि रज़ि तार स्यज़रुक वर,
सत्वर छ़ाँडनुक सामाऩ् कर।।

दल–दल त्रॉविथ कल़् न्चमराव।
वुनि छुय वेल़् स्वर दीव़् सुन्द नाव।।६।।

तुल़् मुल वातनस च़्य च़ोर वत़् छय,
च़ोर्वय छिः सपदान तोर ताञ् तय।

ज्ञान यूग ब्ययि कर्मयूगः द्वनवय,
राज यूग भक्तियूग सान च़ोर गय।।

योदवय च़ोऱ् वऽञ छु तोऱ् कुय पय,
ब्योन ब्योन यूगन छय ब्योन ब्योन क्रय।

पोत युथऩ् ह्यख व्वञ च़्य सॉन्य द्ऱ्य छय,
यथ वति प्रय छय तथ त्राव सय।।

स्वय कथ तु़ स्वय वथ वारह अञ्ज़राव।
वुनि छुय वेल़् स्वर दीव सुन्द नाव।।७।।

योदवय च़ ग्वडनिचि वति नेररव,
श्रवनऽचि ज़चि ब्ययि ज़ेरिकार ह्यख।

ज़चि फिरि पचि फ्युर वारह कऽरि ज़्यख,
न्यत–अन्यत बुदिजाम पाऽरावरव।।

राग़्चि फासि येलि मुच़रावख,
"शम दम तु़ ओपरम त्यलि प्रावरव।

तितिख्ययि हन्दि ज़ोर ब्रोंठ ब्रोंठ पख,
श्रद्धायि बजि जायि अद् वातख।।

पोज़ पऽज़राव हाव मुमूख्यो भाव।
वुनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।८।।

अमि पत् गरि रोज़नच कथ चठ,
गोर् मोख महावाक्य उपदीश रठ।

तत्पद् अजिगटि त्वमपद् हट
मननकि नीलवट् सत्यन चठ।।

फटनस युथ न् यिख ब्रोंठ छय त्रठ,
निधिध्यासन रट फिर अरहट।

अरहटऽ अरहटऽ मंज़िल चठ,
स्यज़ि वति वातख तुलमुल प्यठ।।

अथ वति वेद्म्वख ज्ञान्यूग नाव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।८।।

ग्वड् ग्वड् कॅरिज़ि गीतायि हज़्ज़ कल,
ग्रट् बल् किञ युथन् वातख डल।

न्यति न्येम् कर्म् ज़ोरह् श्वज़राव मल,
बुथि युथन् रोजिय काँह गाँगल।।

कर्मस छु साऽरिस्य स्त्य स्त्य फल,
फलऽ रोस्त कर्म करनुक ह्यछ छ़ल।

कारऽ खाऽतरह कारकर, मशराव फल,
ववन् ब्रोंठ ब्योल ग्वड् क्रायि मञ्ज तल।।

पतऽ युथन् रोज़िय अत्गतग्राव।
वुनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१०।।

कारस मञ्ज़ येलि अथऽ चानख,
अमि वति हुन्द मज़ऽ पानऽ ज़ानख।

पर त् पान यकसान येलि ज़ानख,
पर प्रकृच़ पान पहचानख।।

नस्ति स्योद पक्यजिऽ यिनऽ वति रावख,
स्वखऽ मार् मति युथनऽ घंरऽ त्रावख,

पानय च़् न्यष्कर्म भाव प्रावख,
तुलमुल येलि पान वात्नावख।।

कर्म् यूग़ व्यध छय स्यध सपदाव।
वुनि छुय वेलऽ स्वर दीव्सुन्द नाव।।११।।

पिलियै वोठ राजयूग वति नेर,
माजि बत् छुय न् ख्योन सपदक सेर।

अमि वति पकनस छि आँठ पाँव्य हेर,
पावि पतऽ पावि छिस स्वनऽ म्वखतऽ डेर।।

ग्वड् दूष् दृष्टि किञ क्लिष्ट ब्रॅच़ शेर,
क्रम् क्रम् सपदिय यम नियम ज़ेर।

म्वछि वठ दोर त्राव नगरऽ निशि नेर,
पान्द्रेंठन किञ आसन शेर।।

भस्त्रिका क्रम् क्रम् दम ठहराव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१२।।

स्थिर प्राण सपदिथ छुय च़्य आधिकार,
व्यषयऽ निषि पथ च़ान यन्द्रिय दार।

अन्द्रिम यन्द्रिय च़् अन्दरी मार,
यकबार प्रावख च़् प्रत्याहार।।

अमिकामि मोक्लिथ दारनायि दार,
ध्यान् ज़ोर् सपदी साख्यात्कार।

अथ वति फल समाध आऽख़्रकार,
छ़ोटरिथ वोनमय राजयूग सार।।

तुलमुल वाद् छुय वारह यादपाव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१३।।

राजयूगऽ नावऽ ब्यिय केंह वत् छय;
यिमऽ वतऽ उत्तभव छि करिमच़ऽ तय।

कुनि वति कीवल ग्वरऽ म्वखऽ क्रय,
केंह वत् स्यद्ध शास्त्र् म्वखऽ छय।।

हठ यूग, मन्त्र यूग शब्द् क्रम त् लय,
सारिन्य मार्गन छु च़्वन हुन्द पय।

यिमऽ च़ोर वतऽति छि ज़य खॉतरय,
राजयूग बजि सडकि त्रावान सय।।

म्वखसर कुनि वति पखऽ वाहराव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१४।।

चूरिम वथ गयि भक्तियुगऽ क्रम,
यमि कर्म् खोत् छुन् कांह उतम्

ग्वड् ग्वड् वीद् भक्तिभाव् परिश्रम,
छ्वप् द्वपि वोपदावि दृढ़ वोपरम।।

ब्रह्म भावनायि छयनऽ प्रतिमायि भ्रम,
वोपरम प्रखटावि यष्ट प्रयम्।

यि छि लरि नावि वथ सुलि गरि लम,
सारिन्|इ ब्रोंठ रठ तुलमुल नम।।

नवि कुस्म् न्वोन हाव मुख्य भक्तिभाव।
वुंनि छुय वेल् स्वर् दीव्सुन्द नाव।।१५।।

ज्ञान् यूग कर्म् यूग राजयूग त्रण
स्यद्ध छय न् आऽकबथ भक्तिभाव् व्यन।।

सु छु पानऽ तल् कनि प्रयमऽ स्वभाव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१६।।

भक्ति यूग् वति प्यठ छु इतिफाकि राय।
यि छु मूखि दामुक नोन वोपाय।।

नत् कति गूर्यबायि राधायि नाव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१७।।

भक्तियूग् वति छुय कर–नावि तार।।
ॲछ नाटि म्वकजार लॉगिथ न हार।।

नत् कति मतिहे त्युथ बसन्त् काव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।१८।।

भक्तियूग वति गछ़ि आसुन दिल।
यि छु कारि आशक यि छु मुश्किल।।

नत् क्याज़ि मॅजनून नॅजदि वन चा़व।
वुंनि छुय वेंलऽ स्वर दीव्सुन्द नाव।।१९।।

भक्तियूग वथ छय कारि फर्हाद।
दर यादि शीरीन घरऽ बर्बाद।।

ननि कथ् वनिमय मनि सञराव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।२०।।

भक्तियूग् वति छुय तखसीर माफ।
तकदीरि आशक छु ऑन–शीन–काफ।।

नत् क्याज़ि खान्मोल जान् घरि द्राव।
वुंनि छुय वेल् स्वर दीव्सुन्द नाव।।२१।।

सूचना

इस लीला का कैसेट भी तैयार होकर आया है। भक्तजन नगरोटा आश्रम से अथवा लेखक के निवास से मंगवा सकते हैं।

परिशिष्ट - २

अब हम श्री ताया जी का लिखा हुआ लेख प्रस्तुत करते है, जो उन्हों ने श्रीमान जी के विषय में लिखा था और विस्थापन के बाद मई १९९३ ई० में दिल्ली से प्रकाशित "कोशुर समाचार" नामक मासिक पत्रिका में छपवाया था।

OUR SAINTS

PAPAJI

THE LITTLE-KNOWN SAINT OF KASHMIR

N.N. Dhar

It is soon going to be three years since the demise of Shriman Papaji Maharaj, Pandit Janki Nath Dhar. Like in many years in the past, before and after his death, his devotees celebrated his birthday on April 13 (Vaisakh Krishna Paksh Saptami) with a yagyna.

Shriman Shri Papaji Maharaj, as he was reverentially and affectionately called by his devotees, breathed his last on July 30, 1990, at 8.30 p.m. at his last earthly abode at 22, Dudganga Colony, Chanapura, Srinagar, Kashmir. He was about 90 years old.

During the last days of Shriman Papaji's life, militancy in Kashmir Valley had acquired a new peak. Terrorist activities, which resulted in curfews, hartals and indiscriminate and wanton killings, posed a great danger

to people living in the State. Because of this, on his death even a competent priest was not available to perform the last rites of this great scholar and saint.

The sacred earthly remains of dear Papaji were consigned to flames in a very tense atmosphere in the presence of a small number of his devotees and family members at the crematorium of Rameshwar Temple at Natipora, Srinagar, on July 31, 1990. No customary rituals could be performed. I remember that a few years earlier, during an illness, Papaji had somewhat unconsciously mumbled a few words to the effect that there would be no "Daha Sanskar" as such for him on his death.

Papapji was a rishi of a unique order. Even his closest associates could not fathom the depths of his greatness. For most of his life Papaji Maharaj worked in the office of the Accountant General, Jammu and Kashmir Government. He continued his spiritual quest both while working in the Government and looking after his family. This is remarkable.

For a few years Papaji worked as an accountant in the late Maharaja Hari Singh's Rajput Boarding School started in 1930 or so in Jammu. One Captain Kala Singh was its Principal and Papaji, while maintaining the accounts, also assisted and advised him in running the institution. Papaji had been allotted a room (which he would call "the cubicle") at the back of a big building which then housed the State Public Library. The building has since been replaced by the present secretariat complex.

In his "cubicle" Papaji underwent tapasya of a very

high order. Here he studied the various Hindu schools of Philosophy. He mastered the Sankhya and the Vedanta. Quite late in life, once it just happened that he had to admit that he was a Shat Shastri. Considering his innate unassuming nature, it was an amazing revelation.

During this period, he practised Patanjali yoga, performed pranayama and underwent many other yogic exercises of a rare kind. These necessitated diet restrictions and strict physical discipline. He survived only on milk and fruit and avoided the intake of salt completely. He drank deeply from the immortal fountains of Upanishads. He studied thoroughly the Brahmasutras and other sutras. He imbibed the true meaning and spirit of the Bhagwad Gita through all available Sanskrit commentaries. Intensive study, physical and mental discipline and meditation as prescribed by shastras culminated in his Aprokhsha Sakhshatkar, coming face to face with the ultimate reality. With regard to his studies, Papaji's main thrust in life was on Vedanta which may be called his first love to which he stuck to the very last. At the same time the true aspirant that he was, he could not possibly ignore the great Shaivic philosophy which has its origin in the land of his birth. Enough was not enough for Papaji! The great saints, Somananda, Utpaldeva, Abhinavgupta and other propounders of Kashmir Shaivism were as familiar and dear to him as the Vedantic acharyas, Gaudpada, Shankara, Madhusudana, Vidyaranya and others. Papaji grasped the subtle difference between the two philosophies. According to him, only a true student of the two could exactly sift the essence of the one from that of the other.

Before taking up the learning of Sanskrit, Papaji had managed to have a good command over Persian and Urdu languages. He had read the classical works of a horde of great Persian Sufi writers and poets like Hafiz, Roomi, Saidi and others, including the renowned sufi poet, Habibullah Nawsheri of Kashmir and also the poetical compositions, "Leelas" of the great Kashmiri Pandit saints, like Parmanand, Rajkak, Mirzakak, Lalishwari, Prakashram and many others.

He learnt Sanskrit and Hindi later, at the age of 22-23 when he started with the Devnagri alphabet in a Sanskrit Pathshala attached to Som Nath Temple, Habakadal, Srinagar. Before launching on the study of the various philosophical and religious works in Sanskrit, he had to study thoroughly Sanskrit prose; poetry and drama to gain necessary proficiency and fluency in the language. He succeded in this task with remarkable speed, not ordinarily possible. He became a great admirer of Kalidasa, especially his Shakuntala.

Papaji was also well conversant with the Ayurvedic and Unani schools of medicine. He possessed sound knowledge of varied subjects like dietetics, physical culture and sex. He was a lover of music. He had a special liking for Persian and Kashmiri Sufiana music. He patronised a few existing Kashmiri sufiana musicians, now an extinct lot, and would himself play on the sitar.

By the time the end came, Papaji's devotees were spread all over. Except for a visit to Delhi for treatment a couple of years before his death, and very brief visits

to Calcutta, Bombay, Pune, Agra and Brindaban, in earlier years and the service period in Jammu, he remained confined to Kashmir, mostly Srinagar. After retirement from service, he would meet his devotees either at his residence or at his ashram Utkrishta Parijat Ashram, at Gouri Shankar Temple, Upper Sathoo, Srinagar. When he became very weak, he spent most of the time in meditation, blessing all those who came to him.

In pursuance of a proposal made in October 1990, a trust, Shri Papaji Memorial Trust, has been registered in Delhi. Initially, a memorial is contemplated to be built, a temple with Papaji's statue in marble, having an adjoining assembly hall of a suitable size. The primary aim of the proposed memorial is to perpetuate Papaji's sacred memory. His devotees can meet there to offer prayers, jointly and individually, and seek his blessings as was done during his lifetime. Other charitable, social, cultural and religious activities, like celebrating Papaji's birthday and his Mahasamadhi day, can also be carried on there.

Papaji spent the major part of his life in Srinagar and a brief span at Jammu. For reasons obvious enough, the memorial cannot be raised at Srinagar; the place of Papaji's birth. Under the prevailing constraints, Jammu seems to be the most appropriate place to have the memorial. In fact, it was at Jammu where, authentically speaking, Papaji attained God realisation.

A managing committee composed of some of his devotees is now working out a plan for the memorial.

(Courtesy Koshur Samachar)

परिशिष्ट - ३

उत्कृष्ट पारिजात आश्रम
एक संक्षिप्त परिचय

– द्वारिका नाथ रैणा

परम सिद्ध श्रीमान श्री पापा जी महाराज एक गृहस्थी सन्त थे। वे राजकीय कर्मचारी भी थे। परिवार जनों का पालन पोषण करना, कार्यालय में राजकीय कार्य नियम पूर्वक करना तथा अन्य प्रकार के कर्त्तव्य कर्म करना उनका साधारण मनुष्य की भांति नित्य नियम था ही। श्रीनगर में सफाकदल (खानकाहे सोक्ता) में निवास करते थे। सेवानिवृत्त होने पर श्रीनगर कें मुख्य मंदिरों (यथा हनुमान मंदिर, दुर्गानाग, गणपतियार श्रीचन्द चिनार मंदिर इत्यादि) में दैनिक उपस्थिति देना उनकी दिनचर्या में था। दुर्गानाग मंदिर एवं श्रीराम मंदिर में वे कुछ अधिक समय कें लिए रहते थे। उन दिनों राम मंदिर बरबरशाह में स्वामी निर्मलानन्द जी महन्त के रूप में आसीन थे। और अमरनाथ यात्रा करने हेतु आने वाले सन्त–साधु इसी मंदिर में आसन लगाते थे। कभी कभी इनकी संख्या सात सौ–आठ सौ से भी अधिक हो जाती थी। इन सब साधुओं के भोजन और चाय पानी का प्रबन्ध करने हेतु स्वामी निर्मलानन्द जी को अथाह परिश्रम करना पडता था। अतः श्रीमान जी की स्वामी जी पर अथाह श्रद्धा थी। और स्वामी जी भी श्रीमान जी का अत्यन्त आदर सत्कार करते थे। सत्थू बरबरशाह की नदी

के उस पार धर्मदास अखाडा को जाने वाली सडक पर नदी के तट पर ही श्री गौरी शंकर मंदिर स्थित है। श्रीमान जी राम मंदिर से आकर इस छोटे से मंदिर में भी आया जाया करते थे और वहां कुछ देर ठहरते थे। वे उस स्थान को सिद्ध पीठ कहा करते थे। पहले इस स्थान पर केवल एक शिव लिंग ही स्थापित था। परन्तु बाद में उस लिंग के ईद गिर्द एक मंदिर भी बनवाया गया। फिर उसी के परिसर में धर्मशाला के रूप मे दो छोटे कमरे भी निर्मित किए गए। एक कमरे में एक कश्मीरी साधू रहा करते थे। उन ही दिनों राम मंदिर में दस गयारह वर्षों का एक बालक साधू वेश में सेवा कार्य में रत रहता था जो दक्षिण भारत से आया हुआ था। उसके सेवाकार्य से श्रीमान जी अति प्रसन्न थे। अतः उन्होंने उस बालक साधू को गौरी शंकर मंदिर में रहने के लिए आमन्त्रित किया। कश्मीरी साधू के पश्चात उसके कमरे में वही बालक रहने लगा। श्रीमान जी राम मंदिर से आकर उसके पास भी इस मंदिर में आते थे। उस बालक साधू का नाम पूर्णानन्द था उन दिनों उस आश्रम में श्रीमान जी के पास कुछ गिने चुने लोग ही आया जाया करते थे जिन में श्री शम्भूनाथ रैणा (गान्धरबल निवासी) और श्रीमती दुर्गा जी भान (भान् मुहल्ला निवासी) विशेष रूप से सेवारत थे। धीरे धीरे भक्त जनों की संख्या बढने लगी। अतः श्रीमान जी को इस आश्रम में कुछ अधिक समय के लिए रहना पडता था। पूर्णानन्द जी ने अपना अध्ययन जारी रखा और संस्कृत में उच्च कोटि का प्रमाण पत्र प्राप्त कर विद्वान बन गए। फिर विधिवत संन्यास आश्रम की दीक्षा ले ली और स्वामी पूर्णानन्द

सरस्वती कहलाए। इन्ही स्वामी के हाथ की बनी हुई चाय प्रसाद रूप में श्रीमान जी स्वयं भी ग्रहण करते थे और अन्य भक्तजनों को भी पिलाया करते थे। स्वामी पूर्णानन्द जी श्रीमान जी का विशेष रूप से ध्यान रखते थे। सेवाकार्य में वे अद्वितीय थे। कुछ समय के लिए वे कश्मीर विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापक भी रहे। अब आने वाले श्रद्धालुओं की संख्या बहुत बढ गई, जिन में हिन्दू, मुसलमान, सिख, स्त्री, पुरूष, बालक, तरूण, वृद्ध, सभी प्रकार के लोग थे। अपनी अपनी इच्छापूर्ति के लिए सब लोग श्रीमान जी से प्रसाद प्राप्त करने की होड में रहते थे।

स्वामी पूर्णानन्द जी के पश्चात आश्रम में शंकरानन्द नामक एक युवा सन्यासी रहने लगे जो श्रीमान जी के मुख्य भक्त बन गए, और श्रीमानजी के अंत समय तक उन्ही के साथ रहे। विस्थापन के बाद शंकर जी ने नगरोटा गांव के ढ़ोंके वज़ीरां मुहल्ले में श्री राधाकृष्ण मंदिर के परिसर में श्रीमान जी के नाम पर उत्कृष्ट पारिजात आश्रम का निर्माण किया जो अब सब भक्तजनों का केन्द्र स्थल बन गया है। कुछ वर्षों से इसी आश्रम में श्रीमान जी की जयन्ती एवं पुण्य तिथि सामूहिक रूप से मनाई जाती है। पिछली शताब्दी के आठवें दशक में गौरी–शंकर मंदिर बरबरशाह में विधिवत एक आश्रम का निर्माण किया गया था। एक प्रबन्धक समिति भी बनाई गई थी, जिसके प्रधान प्रो० पुष्करनाथ जी कौल हैं। प्रबन्धक समिति ने आश्रम का नाम 'श्रीमान पापा जी आश्रम' रखने का प्रस्ताव रखा था, परन्तु श्रीमान जी ने उसे स्वीकार नहीं किया। फिर उन्होंने ही स्वयं इसका "उत्कृष्ट पारिजात आश्रम" का

नामकरण किया। उस आश्रम में विस्थापन तक भक्तजनों की श्रद्धा–भक्तिपूर्वक गतिविधियां सुचारू रूप से चलती रहीं।

इन गतिविधियों में श्रीमान जी का जन्मोत्सव समारोह एवं द्वितीय नवरात्रों के पश्चात यज्ञ समारोह उल्लेखनीय हैं। श्रीमान जी का जन्मोत्सव वैशाख कृष्णपक्ष सप्तमी को बडी श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक पुरोहित श्री सर्वानन्द जी तथा श्री सुन्दरी नाथ जी की उपस्थिति में मनाया जाता था। इस अवसर पर एक महायज्ञ भी रचाया जाता था। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात उपस्थित भक्तजनों एवं श्रद्धालुओं का प्रसाद रूप में महाभोज होता था।

प्रबन्धक समिति के प्रमुख एवं सक्रिय सदस्य :

१.	श्री निरंजन नाथ दर	संरक्षक
२.	श्री प्रेम नाथ दर	संरक्षक
३.	प्रो० प्रष्कर नाथ कौल	अध्यक्ष
४.	श्रीमती दुर्गा जी भान	
५.	श्री शम्भू नाथ रैणा	
६.	श्रीमती कृष्णा घासी	
७.	श्रीमती शकुन्तला	
८.	प्रो० चूनी लाल रैणा	
९.	प्रो० तेज कृष्ण मुन्शी	
१०.	श्री त्रिलोकी नाथ पण्डित	लेखक
११.	श्री सोमनाथ सफ़ाया	
१२.	श्री लोक नाथ कौल	
१३.	श्रीमती मुन्नी हण्डू	

१४. श्री सुशील वातल

१५. श्री रमेश गंजू

१६. श्री रमेश कौल (शराबी)

१७. श्री विनय मिस्री

१८. श्रीमती जया जी पण्डित

१९. श्री महाराज कृष्ण भान

२०. श्रीमती नन्सी भान

२१. श्रीमती कुसुम बाबू

२२. श्री द्वारिका नाथ रैणा

२३. श्री हृदय नाथ तोषखानी

२४. श्री बनसी लाल सप्रू

२५. श्री प्यारे कृष्ण खेर

२६. श्री बनसी लाल जोशी

२७. प्रो० सोम नाथ पण्डित (वाट)

२८. श्री हृदय नाथ पण्डित (वाट)

२९. श्री भूषण लाल जुत्शी

३०. श्रीमती संतोष दर

३१. श्री बद्री नाथ भान

३२. श्री चूनी लाल घासी

३३. श्रीमती सरला (केनाड)

३४. श्रीमती सरला टापेलू

इनके अतिरिक्त और भी कई महानुभान श्रद्धालू आश्रम के साथ संलगन थे।

विस्थापन के बाद कुछ वर्षों तक कश्मीर में बनी हुई प्रबन्धक समिति के तत्त्वावधान में ही श्री रामकृष्ण अद्वैत आश्रम उधूदाला, जम्मू में श्रीमान जी की जयन्ती एवं पुण्य तिथि सामूहिक रूप से मनाई जाती थी। जब तक आश्रम के अभिभावक श्री शक्ति चतन्य जी जीवित थे तब तक उनकी ही इच्छा अनुसार यह काम वहां अच्छी तरह चलता रहा। उनके ब्रह्मलीन होने के बाद नगरोटा में स्वा० शंकरानन्द द्वारा निर्मित "उत्कृष्ट पारिजात आश्रम" में ही सामूहिक रूप से यह कार्यक्रम मनाया जाने लगा, जो ईश कृपा से आज तक सुचारू रूप से चल रहा है।

। ॐ शान्ति।























Printed at : M.K Enterprises J.K. Colony, Ploura Top, Jammu Cell. : 941918768